VISHVA–JYOTI REGD NO. PB-HSP-01 (1.1.2024 TO 31.12.2026) R.N. No. 1/57 ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

72वां वर्ष, अंक 12, मार्च, 2024

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
प्रो.(डॉ.) प्रेम लाल शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7/309, डी. सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस (1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com,
vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे,सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति निःशुल्क नियमतः भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति निःशुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को निःशुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : 10 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७२ } होश्यारपुर, फाल्गुन, २०८०; मार्च २०२४ { संख्या-१२

सिंहे व्याघ्र उत या पदाकौ, त्विषिदग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान, सा न ऐतु वर्चसा संविदाना।।

(अर्थ. ६,३८,१)

सिंह में, व्याघ्र में, सांप में, अग्नि में, ब्राह्मण में, सूर्य में जिस (स्वाभाविक शक्ति का) प्रकाश हो रहा है, (वही मेरे अन्दर भी हो।) जिस (स्वाभाविक शक्तिरूपिणी) देवी भगवती ने इन्द्र (तक) हो प्रकट कर रखा है, वह तेज-पुंज को साथ लिए हमें भी आ कर कृतार्थं करें।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

अव्यक्ताऽऽदीनि भूतानि व्यक्त-मध्यानि भारत।
अव्यक्त-निधनान्य् एव तत्र का परिदेवना।।

(गीता. २.२९)

हे भरत-वंशज (अर्जुन), प्राणियों की (सत्ता-शृंखला) का (वर्तमान जीवन रूपी) मध्य भाग (ही) व्यक्त (रूप से दिखाई देता)है, (परन्तु उनकी सत्ता-शृंखला के दोनों छोर अर्थात् उनके) जन्म (के पहले की, तथा) मृत्यु (के पीछे की अवस्थाएं) व्यक्त (रूप से) नहीं (दिखाई देती)। (जब स्थिति ही ऐसी है,) तो फिर (किसी की मृत्सु-मात्र का विचार करके) शोक (करने का) क्या (अर्थ हो सकता है)?

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ मृगांक मलासी	साधारणीकरण : भट्टनायक के परिक्षेप में	लेख	७
डॉ. उदयनाथ झा 'अशोक'	हलायुध और महिधर	लेख	१३
डॉ. सत्यदेव सिंह	उपासना का समय विधि एवं फल	लेख	२८
श्री मदन मोहन साह	रामचरितमानस में मंदोदरी	लेख	३३
श्री सीताराम गुप्ता	सद्गुण एवं संघर्ष ही किसी को राम बनाते हैं	लेख	४१
श्री भूपेन्द्र सिंह	भगवद्गीता किञ्चिदधीता (द्वितीय अध्याय से)	लेख	४४
श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा	खुदाई	कहानी	४७
श्रीमती शशिप्रभा बिंजोला कुकरेती	चले राम लला के मन्दिर कौशल्या बड़भागी के घर	कविता	५१
	संस्थान-समाचार		५३
	पुस्तक-समीक्षा		५४

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. १२
मार्च ,२०२४

साधारणीकरण : भट्टनायक के परिप्रेक्ष्य में

- मृगांक मलासी

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः रस विषयक समस्त व्याख्यान परम्परा का मूल यही रस सूत्र है जिसके परिप्रेक्ष्य में साधारणीकरण की अवधारणा का उद्भ्व हुआ है। कवि की शब्दार्थमयी विभावादि सृष्टि के साथ सहृदय के आनन्द का क्या सम्बन्ध है तथा काव्य में व्यक्त भाव सहृदय के स्वगत भाव में कैसे परिणत होते हैं इसका समाधान साधारणीकरण के बिना नहीं किया जा सकता। साधारणीकरण की पूर्वपीठिका के रूप में सर्वप्रथम भरत के रस सूत्र को जानना आवश्यक है।

वस्तुतः रस सम्बन्धी समस्त परवर्ती चिन्तन का मूलमंत्र भरत मुनि का रस निष्पत्ति सूत्र है। सूत्र में रस की निष्पति का निर्वचन किया है परन्तु परवर्ती आचार्यों द्वारा की गई व्याख्याओं के विस्तार क्रम में उक्त सूत्र मात्र रस-निष्पत्तिपरक सूत्र न रहकर रस के स्वरूप लक्षण का भी प्रकाशक बन गया इसीलिए अभिनवगुप्त ने इसे रस लक्षण सूत्र ही कहा है।[1] रस सूत्र का अर्थ है विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पति होती है। भरत के अनुसार रस नाट्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि रस के अभाव में नाट्य का कोई अर्थ प्रवर्तित नहीं होता न तो विभावादि अस्तित्व प्राप्त कर सकते हैं और न ही वे बोधगम्य हो सकते हैं। विभावादि के संयोग और उनके संयोग से होने वाली निष्पत्ति के लिए भरतमुनि दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं कि जिस प्रकार नाना भावों के संयोग (उपगम) से (नाट्य) रस की निष्पत्ति होती है जिस प्रकार गुड़ आदि द्रव्यों, व्यञ्जनों और औषधियों से षाडव आदि रस बनते हैं उसी प्रकार अनेक भावों से मिलकर (उपगत) स्थायी भाव भी रसत्व को प्राप्त होते हैं।[2]

साधारणीकरण को सर्वप्रथम विवेचित करने का श्रेय भट्टनायक को प्राप्त है। यद्यपि अभिनवगुप्त के अनुसार भरतमुनि ने ही सर्वप्रथम साधारणीकरण का निर्देश किया। अभिनवभारती में वे लिखते हैं- **स एष सर्वो मुनिना साधारणीकरणभावसिद्ध्या रसचर्वणोपयोगित्वेन परिकरबन्ध समाश्रितः इति तत्रैव स्फुटीभविष्यति।**

वैसे नाट्यशास्त्र के सप्तम अध्याय में भाव-विवेचन के सम्बन्ध में भरत द्वारा प्रयुक्त 'सामान्य गुणयोगेन' पदावली को परवर्ती साधारणीकरण का बीजभूत और सर्वप्रथम उपलब्ध संकेत माना जा सकता है-

'एभ्यश्चसामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यन्ते'

नाट्यशास्त्र में साधारणीकरण सदृश अवधारणा का स्पष्ट निर्वचन प्राप्त नहीं होता तथापि स्थूलरूप में 'सामान्य' का अर्थ साधारणीकरण ही प्रतीत होता है। सामान्य से भरत का तात्पर्य भाव के अधिकाधिक लोकसंवादी और सर्वसाधारण रूप से प्रतीत होता है उसके विशिष्ट व्यक्ति सम्बन्ध मुक्त निर्विशेष रूप से नहीं। सप्तम अध्याय में भरत भाव के सामान्य लक्षण की व्याख्या करने का कथन करते हैं-

इदानीं भावसामान्यलक्षणमभिधास्यामः।[3]

जबकि साधारणीकरण से भट्टनायक का तात्पर्य भाव को सर्वसाधारण रूप में ले आने से नहीं अपितु आस्वाद की स्व-पर बाधा से मुक्त निर्विशेष रूप देने से है। यद्यपि भरत नाट्य से प्रेक्षक के हृदयसंवाद की बात करते हैं तथापि उनका हृदय-संवाद लौकिक सुख-दुःखात्मक है यह उनके प्रेक्षक की मनः स्थिति विषयक कथन से स्पष्ट है।[4]

रसनिष्पत्ति पर विचार करते हुए भरतसूत्र के पहले व्याख्याकार भट्टलोल्लट और शंकुक ने यद्यपि शब्दशः साधारणीकरण का उल्लेख नहीं किया परन्तु अपने व्याख्यानों में वे साधारणीकरण की परिधि में भ्रमण करते रहे। भट्टलोल्लट ने जब यह कहा कि सामाजिक को अनुकर्त्ता (नटादि) में अनुकार्य (रामादि) की प्रतीति होती है तो भले ही यह प्रतीति काल्पनिक या आरोपित सही पर इससे सामाजिक को जो तत्थतामूलक आनन्द (काव्यरस) प्राप्त होता है वह सहानुभूति तत्त्व किए बिना सम्भव नहीं है। यही सहानुभूति या समवेदना भट्टनायक और अभिनवगुप्त के साधारणीकरण का प्राक्-रूप है। इसी प्रकार शंकुक के अनुमितिवाद में 'चित्रतुरगन्याय' से जो अनुकर्त्ता में अनुकार्य की अभेद प्रतीति और उसी आधार पर रत्यादि की अनुमिति होती है वह अभेद-मूलक आरोपित भाव अनुभूति होने के कारण अपने अर्थ में भट्टनायक के साधारणीकरण को हृदयंगम कर लेती है।

भट्टनायक के रस-विवेचन सम्बन्धी अंश अभिनवभारती, ध्वान्यालोक-लोचन, काव्यप्रकाश और काव्यानुशासन आदि ग्रन्थों में उद्धृत हैं। अभिनवभारती और लोचन में अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के मत को विस्तारसहित प्रस्तुत किया है। भट्टनायक ने आक्षेप किया कि लोल्लट और शंकुक की स्थापनाओं में सामाजिक की सौन्दर्यानुभूति के लिए कोई युक्तिसंगत और मान्य आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। रसास्वादन में सामाजिक की महत्त्वपूर्ण सत्ता है इसलिए रस का सामाजिक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित होना चाहिए और रस निष्पत्ति का विवेचन भी तदनुसार ही किया जाना चाहिए।

भट्टनायक ने अपना स्वतन्त्र चिन्तन प्रस्तुत

किया। उनके अनुसार रस की उत्पत्ति प्रतीति या अभिव्यक्ति नहीं होती अपितु रस की 'भुक्ति' होती है। इसीलिए भट्टनायक का मत भुक्तिवाद कहलाता है। इस स्थापना की पुष्टि के लिए भट्टनायक ने शब्द के पूर्वस्वीकृत लक्षणा और व्यञ्जना व्यापार से भिन्न 'भावकत्व' और 'भोजकत्व' नामक व्यापारों की परिकल्पना की। साधारणीकरणात्मक भावकत्व व्यापार के बल पर सामाजिक पहले विभावादि के रूप में कवि–सृष्टि को लौकिकता वैशिष्ट्य से मुक्त कर लेता है और तत्पश्चात् उनके द्वारा प्रकट रत्यादि को भी उसी प्रकार किसी व्यक्ति-विशेष से असम्बद्ध (साधारणीकृत) करके व्यक्तिगत राग–द्वेषादि के संकट से ऊपर सात्विक स्तर पर भोगता है।[४]

काव्यप्रकाश में मम्मट ने भट्टनायक के मत को इंगित किया है कि रस की अनुभूति सामाजिक को होती है। रस साधारणीकरण स्वरूप 'भावकत्व' नामक व्यापार से साधारणीकृत स्थायिभाव सत्त्व के उद्रेक से प्रकाश और आनन्दमय अनुभूति की स्थिति के सदृश भोग से अर्थात् शब्द के 'भोजकत्व' नामक व्यापार से आस्वादित किया जाता है।[५]

बालबोधिनीकार झल्कीकर वामनाचार्य ने भट्टनायक के साधारणीकरण को इस प्रकार से निर्देशित किया है- कविसृष्टि के रूप में विभावादि को लोक–सृष्टि के सम्बन्धवैशिष्ट्य से शून्य करके साधारण कर लेना और रत्यादि को भी किसी लौकिक व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य से शून्य करके साधारण कर लेना साधारणीकरण कहलाता है।[६]

काव्यप्रकाश की प्रदीप टीका में गोविन्द ठाक्कुर भट्टनायक ने कहा है कि सामाजिक विभावादि कवि–सृष्टि की और रत्यादिभाव की जो किसी भी लौकिक सम्बन्ध विशेष से मुक्तरूप में भावना करता है उसी का नाम साधारणीकरण है। विभावादि के रूप में सीतादि की उपस्थिति कामिनीत्वादि सामान्य धर्म के साथ और रत्यादि की उपस्थिति भी व्यक्तित्व विशेषांश के सम्बन्ध के परिहार के साथ इसलिए होती है।[७]

भट्टनायक के साधारणीकरण के सम्बन्ध में उक्त सभी उद्धरणों का शब्द–भेद से यही आशय है कि रत्यादि भाव का किसी भी व्यक्ति–विशेष के साथ सम्बन्ध मानना सत्त्वोद्रेक मूलक लोकोत्तर रसास्वाद का बाधक है। ऐतिहासिकपात्र रामादि में लौकिक सुख–दुःख की उपस्थिति के कारण नटादि में प्रत्यक्ष व्रीड़ा आदि के कारण और अपने ही भीतर राग–द्वेष की आसक्ति आदि के कारण सामाजिक को रत्यादि का सात्विक या अलौकिक भोग (अनुभूति) करने में कठिनाई होती है। अतः भट्टनायक कहते हैं कि सामाजिक के स्थिति कोण से काव्य सृष्टि की भावना से साधारणीकरणात्मक भावकत्व नामक व्यापार माना जाए जो विभाव, अनुभाव और संचारी भाव को किसी भी व्यक्ति–

विशेष के सम्बन्ध से दूर सामान्य धर्म के रूप में उपस्थित करे और तत्फलस्वरूप रत्यादि स्थायी भाव भी साधारणीकृत होकर ही सामाजिक के सम्मुख भोगार्थ उपस्थित हो (असत्या अपि रतेरास्वादोऽलौकिकत्वादुपपन्ना:) और भी स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो भावकत्व व्यापार के रूप में सामाजिक काव्य-सृष्टि की भावना करता है। यह काव्य-सृष्टि कवि की कल्पित भाव सृष्टि होने के कारण सामाजिक के लिए अनुकार्य (रामादि) के और अनुकर्ता (नटादि) के एवं स्वयं अपने भी व्यक्तित्व-विशेषांश से शून्य अर्थात् साधारणीकृत होती है। विभावादि ही साधारणीकृत हैं तो उनके द्वारा प्रकट होने वाला रत्यादि स्थायिभाव भी साधारणीकृत रूप में ही सामाजिक के सामने आता है। साधारणीकरण व्यापार से 'असाधारण' विभावादि साधारणीकृत होकर आस्वाद्य हो जाते हैं। काव्य का वैशिष्ट्य यही हे कि वह एक विशिष्ट प्रक्रिया के माध्यम से वर्णित 'विशिष्ट' विभावादि को उनके विशिष्ट सम्बन्धों से मुक्त कर उनका साधारणीकरण कर देता है। भट्टनायक समझ गए थे कि लोक जीवन में भाव के आस्वाद्य होने में सबसे बड़ी बाधा आस्वाद्य और आस्वादक का विशिष्ट देश-काल व्यक्ति सम्बन्ध है। यदि इस वैशिष्ट्य का तिरोभाव हो जाये तो आस्वादन सम्भव हो सकता है। लोक जीवन में यह वैशिष्ट्य तिरोहित नहीं हो पाता इसलिए वहाँ भाव आस्वाद्य भी नहीं हो पाते जबकि काव्य में वैशिष्ट्य का तिरोभाव सम्भव हो जाता है, काव्यास्वादन के क्षण में दोनों पक्ष अपने-अपने वैशिष्ट्य से मुक्त हो जाते हैं इसलिए काव्य-वर्णित भाव आस्वाद्य हो जाते हैं।

भट्टनायक के अनुसार लोक के किसी भी व्यक्ति-विशेष से असम्बद्ध होने के कारण यह रत्यादि (अलौकिक होने के कारण) साधारणीकृत है और साधारणीकृत होने के कारण अलौकिक है। इस आगन्तुक अलौकिक रत्यादि के भोग के लिए भट्टनायक के सामाजिक को अपनी भी व्यक्तिगत सीमा छोड़कर 'रजस्तमोगुण' से ऊपर सात्विक क्षेत्र में पहुँचना पड़ता है। इस प्रकार से भट्टनायक के साधारणीकरण को संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार से हृदयंगम किया जा सकता है-

साधारणीकरण का अर्थ है 'असाधारण को साधारण' बना देना। साधारण बना देने का अर्थ है विभावादि की देशकाल वैशिष्ट्य से और सामाजिक की निजमोहसंकटता से अर्थात् स्व-पर की भावना से मुक्ति। यह साधारणीकरण का मूल लक्षण है। साधारणीकरण विभावादि के साथ सामाजिक की चेतना का भी होता है। विभावादि का तात्पर्य है काव्य के सर्वांग अर्थात् आलम्बन, उद्दीपन, आश्रय, अनुभाव और सञ्चारी भाव। सहृदय अपनी साधारणीकृत भाव का भोग करता है अर्थात् साधारणीकरण सामाजिक की चेतना और उसके स्थायी भाव का होता है।

साधारणीकरण लौकिक-अलौकिक सभी पात्रों का होता है। कलात्मक अनुभव के स्तर पर लौकिक-अलौकिक सदृश भेद न रहकर सब कुछ एकाकार हो जाता है अर्थात् अभेद प्रतीति होती है। साधारणीकरण दोषाभाव और गुणालंकार के सद्भाव लक्षणीय काव्य (भावन व्यापार) से और चतुर्विध अभिनायपरक नाट्य से सम्भव होता है। साधारणीकरण के बिना रस-भोग सम्भव नहीं है इसलिए साधारणीकरण रस-भोग के पूर्व की अपूर्व अथवा काव्यैकगोचर प्रक्रिया है। लोकोत्तर रसानन्द की चर्वणा साधारणीकरण के फलस्वरूप ही सम्भव होती है।

भट्टनायक के अनुसार साधारणीकरण भावकत्व-व्यापार की आत्मा है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि भावकत्व एक बृहत्तर व्यापार है और विभावादि का साधारणीकरण उसका एक अंग है। साधारणीकरण को भावकत्व व्यापार का फल भी नहीं माना जा सकता। भावकत्व-व्यापार यहाँ विशेष्य है। विभावादि का साधारणीकरण उसका स्वरूप स्वभाव है जैसा कि कहा जाए कि अमुक वस्तु हमारे लिए दु:खात्मक है तो यहाँ अनुभूति ही दु:ख स्वरूप है, अनुभूति का फल दु:ख नहीं है। एवमेव उक्त कथन में यदि दु:ख को अनुभूति की आत्मा माना जाता है तो ऐसा केवल अनुभूति के स्वरूप-सर्वस्व के रूप में ही माना जा सकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि दु:खात्मक अनुभूति में अन्य इतर विषय भी अनुभूत होता है दु:ख मूलत: या मुख्यत: अनुभूत होता है। अत: भट्टनायक के अनुसार भावकत्व व्यापार अर्थात् साधारणीकरण।

शंकर देव अवतरे के अनुसार भट्टनायक के साधारणीकरण की तीन कोटियाँ क्रमश: उपस्थापित होती हैं। पहली श्रेणी विभाव और दूसरी अनुभाव के साधारणीकरण की है। तीसरी श्रेणी स्थायी भाव के साधारणीकरण की है जो अपने क्षेत्रीय भाव सञ्चारी के साधारणीकरण के अनुषंग से उपस्थित होती है। इन सभी कोटियों में भट्टनायक के साधारणीकरण का एक ही रूप और स्वरूप है जो या तो व्यक्ति-विशेषांश के परिहार के कलेवर में निषेधात्मक है और फिर सर्व-साधारण योग्यता के कलेवर में विधेयात्मक है।[१]

निषकर्षत: कहा जा सकता है कि भट्टनायक के साधारणीकरण का आशय है- व्यक्तित्व का अलौकिक रूप में निर्विशेषीकरण या वस्तु और भाव का व्यक्ति-विशेषांश के परिहासर के साथ ग्रहण। भट्टनायक का सामाजिक अपने भावानात्मक स्तर पर (भावकत्व व्यापार के रूप में) कवि-सृष्ट विभावादि को अनुकार्य और अनुकर्ता के लौकिक व्यक्तित्व-विशेषांश के परिहार के साथ ग्रहण करता है एवं अनुभावों के द्वारा प्रकटित सञ्चारी और स्थायी भाव को भी उसी प्रकार अनुकार्य-

अनुकर्ता तथा अपने भी लौकिक व्यक्तित्व विशेष से मूलत: असम्बद्ध पाता है। यही भट्टनायक का साधारणीकरण है जो एक ही निर्विशेषीकरण किंवा अलौकिकीरण का स्वरूप स्वीकार किए हुए हैं। साधारणीकरण वस्तुत: भट्टनायक की अनुपम निधि है जिसने सहृदयों सामाजिकों का साक्षात् सम्बन्ध रस से स्थापित किया और रस की आलौकिकता का सम्यक् निर्वाह किया है।

- आचार्य (संस्कृत) डॉ. शिवानन्द नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग, चमोली।

---

१. एव क्रमहेतुमभिधाय रसविषयं लक्षणसूत्रमाह। अभिनवभारती पृ. ४४२

२. यथा हि नाना व्यंजनौषधिर्द्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पतिः तथा नाना भावोपगमाद्रस निष्पतिः। नाट्यशास्त्र ६ अध्याय

३. ना. शा. ७/८

४. ना. शा. २७.५४

५. निविडनिजमाहसंकटतानिवारणवारिणा विभावादिसाधारणीकरणात्मना अभिधातो द्वितीयंशेन भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानोरसः। अभि. भा. पृ. १५७

६. न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभ्व्यज्यते अपितु नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी, सत्त्वोदेकप्रकाशनन्दमय-सेविद्वि श्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते इति भट्टनायकः। का. प्र. पृ. १०६-१०७

७. अन्य सम्बन्धित्वेनासाधारणस्य विभावादेः स्थायिनश्चव्यक्तिविशेषांशपरिहारेणोपस्थापनं साधारणीकरणम्। बालबोधिनी टीका, पृ. २५३

८. भावकत्वं साधारणीकरणं। तेन हि व्यापारेण विभावादयः स्थायी च साधारणीक्रियन्ते। स्थाय्यनुभावादीनां च सम्बन्धिविशेषानवच्छिन्नत्वेन। प्रदीप टीका, पृ. १३६

९. साधारणीकरण पृ. १६-१७

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. १२
मार्च ,२०२४

हलायुध और महिधर

- उदयनाथ झा 'अशोक'

मिथिलाके कौलिक ऐतिहासिक परम्परा और पञ्जीप्रबन्ध के आधार पर 'सिंहासमय' (सिंहाश्रम) एवं 'सोदरपुर' मूलके बीजी-पुरुष (ज्ञातनामा प्राचीनतम पुरुष) 'महामहोपाध्याय हलायुध' हैं, जिनके पुत्रका नाम 'महोदधि' था, साथ ही महोदधिके पौत्र एवं यज्ञेश्वर (जागे) के पुत्र थे 'महिधर' जिनको लेकर कतिपय विद्वानों को भयंकर भ्रम बना हुआ हैं। इसलिए हमने यहाँ इन्हीं दोनों का प्रामाणिक परिचय देने का यत्न कर रहे हैं, अतः हमारे इस प्रयास को सुधीजन अन्यथा ग्रहण न करें।

अपने निबन्धमन्दार मञ्जरी में डॉ. शशिनाथ झा[1] वेद एवं कर्मकाण्ड के अग्रणी विद्वान् हलायुधको गंगुलिवार[2] एवं सोदरपुरिए मूलक बीजीपुरुष मानते हैं तथा लिखते हैं कि हलायुध के पुत्र **महोदधिका** उल्लेख श्रीकृष्ण मिश्र ने अपने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में किया है। अपने उसी ग्रन्थ के पृष्ठ १६० में डॉ. झा वेद-कर्मकाण्ड के विद्वान् इन्हीं हलायुध को हलायुधकोश का कर्ता भी मानते हैं[3] और ब्रह्मणसर्वस्व पण्डितसर्वस्व कर्ता भी। जबकि उसी ग्रन्थ के पृ. १६७ पर इन दोनों ग्रन्थों के कर्ताको लक्ष्मणसेन का धर्माधिकारी बताते हैं। साथ ही पृ. १६० पर हलायुध-कोशकार से उन्हें भिन्न कहा गया है। इन्होंने पृ. १६० पर जिस हलायुधकी रचना 'कविरहस्य' बताते हैं, उसी हलायुध को त्ने पृ. १४८ पर राष्ट्रकूटराजा का राजपण्डित मानते हुए १५० ई. समय भी उल्लिखित करते हैं। यानि उनके मत में हलायुध तीन हुए हैं- कविरहस्यकार (१५० ई.), हलायुधकोशकार (११वी. शताब्दी), सप्तसर्वस्वकार लक्ष्मणसेन के सभासद (१२०० ई.)। एक स्थान पर[4] कवि रहस्यकार को भिन्न मानते हैं तो दूसरे स्थान[5] पर हलायुध कोशकार को ही कविरहस्यकार बताते हैं, इसे वैचारिक भ्रम नहीं तो और क्या कहा जाय?

राजा लक्ष्मण सेन के धर्माधिकारी महामहत्तक हलायुधको भी इन्होंने मैथिल ही मान लिया है[6] जिन्होंने सात सर्वस्वों (ब्राह्मण-वैष्णव-शैव-शाक्त-गुणी-कृत्य आदि) की रचना की है। डॉ. झा इनकी रचनाओं में गुणीसर्वस्व और पण्डितसर्वस्व को अलग-अलग उधृत करते हैं, जबकि ये दोनों एक ही कृति के दो नाम हैं। इसकी मातृका[7] के भीतर दो स्थानों पर पण्डितसर्वस्व नामान्तर देखा जाता है, तो मङ्गलाचरण एवं पुष्पिका में गुणीसर्वस्व नाम अंकित है। डॉ. झा के निबन्ध को अन्तर्निहित सार

यही है कि हलायुध दो अथवा तीन हुए हैं और सबके सब मैथिल।

जब कि पं गोविन्द झा[८] द्वारा प्रतिपादित हलायुध सम्बन्धी कथनों को हम अक्षरश: सत्य और प्रामाणिक मानते हैं, जिसमें उन्होंने हलायुध का न तो कोई विशेषण दिया है, न रचनाका नाम, किन्तु समय के सम्बन्ध में अवश्य उन्हें दशम शतक में अवस्थित माना है। इनके द्वारा हलायुध का दिया गया अनुमानित समय अवश्य ही विचारणीय हो सकता है, पर हठात् प्रत्यख्यानीय भी नहीं। इसी आनन्दमन्दाकिनी[९] में पं दीनानाथ झा का एक लेख प्रकाशित है, जिसमें उन्होंने हलायुध को 'वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित्' कहा है, जो कि निश्चय ही इनके पूर्ववर्ती लेखों से आहरित हुआ है। इसका अभिप्राय कदाचित् उनके ब्राह्मणसर्वस्व ग्रन्थ के रचयिता होने से हो सकता है। परन्तु इनके लेख में उनके अन्य वंशजों की चर्चा होने पर महोदधिका उल्लेख नहीं मिलता।

आचार्य श्यामसुन्दर मिश्र[१०] के अनुसार ईसा की ११ वीं सदी में मिश्रहलायुध ने शुक्लयजुर्वेद की काण्वसंहितापर ब्राह्णसर्वस्व नामक भाष्य लिखा तथा मीमांसासर्वस्व आदि की रचना की। इसी लेख में वे आगे इन्हीं हलायुध को सिंहाश्रम तथा सोदरपुर मूल के ज्ञात बीतीपुरुष भी मानते हैं। इसी प्रकार प्राचीनकाल में प्रख्यात[११] रहे जिस हलायुध को डॉ. विश्वेश्वर मिश्र परोक्ष रूप से मैथिल मानते हैं, उन्हें ही अपने ग्रन्थ के पृ. २५ पर स्पष्ट रूप से अपने कुल-मूल से जोड़ देते हैं। साथ ही इन्होंने मन्त्रमहोदधि रचयिता[१२] म.म. महोदधि को मैथिलवंश 'सिंहाश्रम' (सिंहासमय) के वीजीपुरुष (ज्ञातनामा प्राचीनतम पुरुष) उपर्युक्त हलायुध का वंशज भी कहते हैं, जिनके वंश में समुत्पन्न सुरेश्वर आदि तीनों भाई संयुक्त रूप से सोदरपुर नामक मैथिल-मूल के प्रवर्त्तक हुए हैं। डॉ. मिश्रका एक लेख 'अयाची-शंकर' विषयक 'मिथिला दर्शन'[१३] नामक पत्रिका में भी प्रकाशित है। इसमें भी कई भ्रामक और मिथ्या बातों का उल्लेख मिलता है। परन्तु यहाँ प्रसंगानुसार हम केवल दो ही विन्दुओं (आलोच्य विषय हलायुध और महीधर से सम्बद्ध) पर विचार करेंगे, शेष (वररुचि, पद्मनाथ और अयाची) विषय का प्रतिपादन अन्यत्र प्रसंग आने पर किया जाएगा।

डॉ. मिश्र अपने इस लेख में हलायुध को विक्रमादित्य सभासद रहे वररुचिका वंशज (अपने प्रपौत्रका प्रपौत्र) यानि सप्तम पीढ़ी में मानते हैं। साथ ही कहते हैं कि हलायुध भानुदत्त[१४] के पुत्र हैं। इस प्रकार वररुचि से भानुदत्त के बीच केवल छ: पीढ़ी का अन्तर है, परन्तु समय की दृष्टि से एक ईसापूर्व प्रथम शतक में तो दूसरे का काल है ईसाकी सोलहवीं सदी। इन सोलह सौ (१६००) वर्षों के बीच मात्र छ: पीढ़ी का होना सन्देह नहीं तो क्या उपस्थापित करता है?

मिश्र जी अपने लेख में हलायुध को भानुदत्त का पुत्र मानते हुए दार्शनिक उदयनाचार्य (१० म श.) का शिष्य बताते हैं जो निश्चय ही चन्दा झा के

आधार पर लिखा गया होगा। जबकि इतिहास इन तथाकथित पिता-पुत्रों को क्रमशः १० म शतक एवं १६ शतक का मानता है। इसी प्रकार मिश्र महोदय ने मन्त्रमहोदधि के कर्त्ता महिधर को हलायुध का वंशज भी माना है।[१४]

डॉ. मिश्र जिस लेखकों[१५] आधार बनाकर यह लेख लिखते हैं, उसी के परवर्ती अंक में प्रकाशित 'क्षमायक्षना' शीर्षक से लेखक का स्पष्टीकरण उन्होंने देखा नहीं क्या? जिसमें लेखक लिखते हैं कि 'मेरे उस लेखकों निराधार, सारहीन और भ्रामक माना जाय, क्योंकि मेरा उक्त लेख हिन्दी एवं मैथिली के दो पूर्ववर्ती लेखों पर आधारित है, जो सर्वथा निर्मूल लेख सिद्ध हो चुके हैं'। ऐसी स्थिति में डॉ. मिश्र के लेख की कितनी प्रामाणिकता होगी, स्वयं पाठक ही विचार करें। लगता है, डॉ. गोस्वामी जी के लेख प्रकाशित होने के बाद किसी पण्डित ने उनसे (जो उन दिनों दरभंगा विद्यापीठ में थे) सप्रमाण प्रतिवाद किया होगा, जिसके बाद यह 'क्षमायाचना' आयी हुई होगी।[१६] क्योंकि डॉ. गोस्वामी जी ने अपने तथा कथित सोदरपुर मूलक पद्माभमिश्र सम्बन्धी लेख में सोदरपुर मूल के बीजी पुरुष के रूप में विक्रमसभ्य वररुचि को माना था तथा इसी वंश में भानुदत्त के पुत्र के रूप में हलायुध को भी समुत्पन्न माना था। उनके अनुसार 'भानुमिश्रस्य वंशीयो वररुचिः समुद्रगुप्तात् परवर्ती आसीदिति'। वररुचि मगध के शासक नन्दवंश के समय में हुए हैं, जो कि गुप्तवंश से प्राचीन है।

मिथिला की परम्परा, पञ्जीप्रबन्ध एवं कतिपय लोगों की प्रामाणिक राय में जिस सिंहाश्रम या सोदरपुर-मूल के बीजी पुरुष हलायुध माने गए हैं, उसी कुल के वीजी पुरुष के रूप मं विश्वेश्वर मिश्र[१७] प्रभृति ने विक्रम-सभ्य वररुचि को बताया है। साथ ही हद तो तब हो जाती है, जब ये लोग रसमञ्जीकार भानुदत्त को हलायुध का पिता भी मान लेते हैं। गुणेश्वरापर नामक गणपति के पुत्र जो भानुदत्त, हलायुध की १३वीं पीढ़ी पर आते हैं, (पञ्जीप्रबन्ध, भानुदत्तकृत कुमार भार्गवीय चम्पू आदि) उन्हें ही ये लोग हलायुध का पिता कह डालते हैं। अपनी बातों को सत्य सिद्ध करने के लिए दो-दो भानुदत्तों की परिकल्पना कर लेते हैं और दोनों के पिता गणपति को यथास्थान लाकर खड़ा भी कर देते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि ये दोनों भानुदत्त एक ही ग्रन्थ के कर्त्ता भी हो जाते हैं।

यहाँ इन्हीं दोनों हलायुध और महीधर का संक्षिप्त परिचय अवलोकनार्थ प्रस्तुत है, ताकि पाठक वास्तविकता से परिचित हो सकें।

हलायुध 1- हलायुध राष्ट्रकूटवंशीय राजा कृष्णराज तृतीय (९४०-९५३ ई.) के सभापण्डित थे। नानार्थ-संग्रह उपोद्घात में पं. आनन्दराम ने राजेन्द्रलाल मित्र सम्पादित 'नोटिस ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स' के आधार पर इन्हें दशम शतक में स्थित माना है, जबकि यही समय डॉ. कीथ[१८] भी बताते हैं, जिनके अनुसार राष्ट्रकूट नरेश कृष्णराज तृतीय का समय ९५० ई. बनता

है। कुछ इतिहासकारों ने कृष्णराज का शासनकाल १६०-१८० ई. माना गया है। युधिष्ठिर जी मीमांसक[१९] हलायुध का समय १२३०-१२६० वि.सं. बताते हैं, जो कि लक्ष्मण सेन वाले हलायुध से मेल खाता है। सम्भव है उनको यहाँ प्रमाद हुआ हो, क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ के पृष्ठान्तर (पृ. ४५१-५२) में हलायुध को १७५-१०५० ई. का स्वीकार किया है।

इनके आश्रयदाता कृष्णराज तृतीय 'अकालवर्ष' उपनामक थे, इस उपनामक कृष्णराज भी उसी कुल में दो हो चुके हैं, द्वितीय एवं तृतीय। इनमें तृतीय ही इनके आश्रयदाता थे, जिसका परिज्ञान हमें इनकी दूसरी रचना पिंगलछंन्द: सूत्र की व्याख्या मृतसंञ्जीवनी से हो जाता है। उसमें आप लिखते हैं कि- '**त्वया कृत परिग्रहे क्षितिवीर (तुडिगवीर) सिंहासने.**।'[२०] तथा - '**यशः शेषीभूते खुडिगनरनाथे गुणनिधौ**'।[२१] यहाँ स्मरणीय हो कि इतिहास वेत्ताओं ने यह प्रमाणित किया है कि तुडिगवीर, तुडिगदेव अथवा खुडिगवीर, खुडिगदेव, कृष्णराज तृतीय के वैमात्रेय अथवा पितृव्यपुत्र थे। एक प्राचीन शिलालेख में कहा गया है कि- '**ऐन्द्रपदजिगीषयेव स्वर्गमधिरूढ़े च ज्येष्ठे भ्रातरि श्रीमत्कृष्णराजदेवे युवराजदेव दुहितारि दन्दकदेव्याममोघवर्षनृपाज्जातः खोड्डिगदेवों नृपतिरभूद्भुवनविख्यातः**। अत: दोनों का समय एक ही निश्चित होता है। 'खुडिगवी' विशेषण के सम्बन्ध में इतिहास वेत्ताओं का यह मानना है कि उन्हें खुडिगप्रान्त या तुडिगप्रान्त का सामन्त होने के कारण ही यह खुडिगवीर विशेषण दिया गया था।

इन्होंने कवि रहस्य, अभिधानरत्नमाला नामक हलायुध कोश, पिङ्गलछन्द: सूत्र की मृतसञ्जीवनी टीका, क्रियाविशेष्यता की रचना की थी। आप तिलकमञ्जरीकार धनपाल के समकालीन और मित्र भी थे। कवि रहस्य के '**धातुपारायणाम्भोधि पारोत्तीर्णधी**' विशेषण निश्चय ही इनके लिए बहुत उपयुक्त था। क्योंकि ये अपने समय के अद्वितीय वैयाकरणों में एक थे। इनके व्याकरण-वैदुष्य का ज्ञान हमें इनकी क्रियाविशेष्यता, मृतसञ्जीवनी टीका प्रभृति रचनाओं से भी हो जाता है। इनके हलायुध कोश के महत्त्व को केवल इसी से आँका जा सकता है कि मल्लिनाथ प्रभृत्ति प्राय: परवर्ती सभी टीकाकारों ने अपनी-अपनी टीकाओं में इसका भरपूर उपयोग किया है।

इन्होनें अपने 'कविरहस्य' नामक ग्रन्थ में प्राय: सभी उदाहरण अपने आश्रयदाता कृष्णराज तृतीय (९९७-१०१३ वि.सं., ८६७-८८८ शकाब्द) की ही प्रशंसा से प्रस्तुत किए हैं-

'**तोलयत्यतुलं शक्त्या यो भारं भुवनेश्वरः। कस्तं तुलयति राष्ट्रकूट-कुलोद्भवम्**।।' इत्यादि। इस ग्रन्थ में नायक के रूप में ये ही राजा दरसाये गए हैं। यह ग्रन्थ संस्कृत धातुओं के नानार्थ तथा समानाक्षर होने पर भी भिन्नार्थका बड़ा ही सुन्दर प्रतिपादक तथा

आख्यातों का अर्थबोधक ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम 'अपशब्दाभासकाव्य' भी है, स्वयं हलायुध लिखते हैं-

कविगुह्यं प्रसक्त्यादिभावगम्यमनेकधा।
यस्य येनोपसर्गेण धातोः कविपदं च यत्।।
अर्थतः शब्दतो वापि समान् धातून्निबन्धता।
तथा हलायुधेनेदं कृतं कविरहस्यकम ।।
आभासन्ति पदान्यत्र प्रचुराण्यपशब्दवत्।
तद्विषमं स्वभावेन निबन्धनमपेक्षते।।

टीकाकार रविधर्मानि इसी नाम को प्रयोग किया है- **'अपशब्दाभासे काव्ये टीकाशतानि चतुर्दशानि रचितानि कविरहस्यं नाम काव्यं समाप्तम्।'** परन्तु ग्रन्थान्तरों से इसके और भी कई नामान्तर प्राप्त होते हैं, जैसे 'कविगुह्य' और 'क्रियानिघण्टु' आदि। यद्यपि इस पर दो विवेचनात्मक टीकाएँ प्राप्त होती हैं, पर रविधर्माकी टीका अधिक प्रामाणिक और विस्तृत मानी गई है। कवि रहस्य शास्त्रकाव्य कोटिकी रचना है, जिसमें २७४ श्लोकों के द्वारा धातुओं के रूपों का विशेष निर्दशन पाया जाता है। परन्तु बर्लिन से प्राकशित पाठान्तर वाले संस्करण में कुछ अधिक, अर्थात् २९९ पद्य हैं। जिसमें कवि सूत्रों के उदाहरणों में विभिन्न धातु पाठों से धातुओं का मूलरूप ग्रहण कर उनके अन्यपुरुष एक-वचन का प्रयोग करते हैं।

जयन्ति मुरजित्पादनखदीधितिदीपिकाः।
मोहन्धकारविध्वंसान् मुक्तिमार्गप्रकाशिकाः।।
प्राणायामश्रमोद्भूतस्वेदार्द्रःपातु वः शिवः।
गङ्गोपगूहनभ्रान्त्या पार्वत्या वीक्षितःक्षणम्।।

लोकेषु शास्त्रेषु च ये प्रसिद्धाः
काव्येषु ये सम्कविभिः प्रयुक्ताः।
उच्चित्य तांश्चित्तविनोदनाय
शब्दानहं धातुभिरुद्धरामि।।...
अस्त्यगस्त्यमुनिज्योत्स्नापवित्रे दक्षिणापथे।
कृष्णराज इति ख्यातो राजा साम्राज्यदीक्षितः।।

इसीकी पुष्पिका में यथा-

इति समाप्तमवाप्तगुणोदयं,
कविरहस्यमिदं रसिकप्रियम्।
सदभिधानधानंहलायुध-,
द्विजवरस्य कृतिः सुकृतात्मन्ः।।

कृष्णाराज तृतीय के निधनोपरान्त हलायुध मालवाधिपति धारानरेश वाक्पतिराज राजा मुञ्ज के दरवार में चले गये, जिनका समय वि.सं. १०३१-१०५२ सिद्ध होता है।[२२] यहीं पर रहकर राजा मुञ्जकी आज्ञा से इन्होंने पिंगलछन्दः सूत्र की व्याख्या की थी, जिसमें राजा मुञ्जु यशोगान में हलायुध ने कतिपय पद्यों का निर्माण किया है। उदाहरणार्थ-

ब्रह्मक्षत्रकुलीनः समस्तसामन्तचक्रनुतचरणः।
सकलसुकृतैकपुञ्जः श्रीमान्मुञ्जश्चिरं जयति।।[२३]
'स जयति वाक्पतिराजः
सकलार्थिमनोरथैक कल्पतरुः'[२४]**।**
तव मुञ्ज नराधिप सेनां वेगवती सहते समरेषु'[२५]
सर्वोर्वीनाथः स जयति नृपतिर्मुञ्जः'[२६]
'मुञ्जनराधिराज भूयात्तव वरयुवितः'[२७]
आदि।

यहाँ 'वाक्पतिराज' और 'मुञ्ज' पदों के आने से निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि इनके

आश्रयदाता राजा मुञ्ज वही हैं जिनका समय इतिहासकारों से ८९३-९१९ शकाब्द निर्धारित किया है। कुछ समालोचक तो यह भी मानते हैं कि मृतसञ्जीवनी में प्रयुक्त सभी उदाहरण इनके अपने नहीं हैं, जो कि रत्नावली आदि ग्रन्थों से आहरित हुए हैं। परन्तु जो हो, पर ये राजा मुञ्ज के आश्रित थे इसमें लवमात्र भी सन्देह नहीं है। मृतसञ्जीवनी टीका में इन्होंने अपने पूर्ववर्ती किसी धरणीधर की भी चर्चा की है-

यदि वाञ्छसि कर्णरसायनं सततममृतधाराभिः,
यदि हृदि वा परमानन्दरसम्।
चेतः शृणु धरणीधरवाणीममृतमयीं
तत्काव्यगुणभूणम्।।[२८]

पर ये कौन थे, किस शास्त्र के अभिज्ञ थे साथ ही कहाँ की विभूति थे ये सब प्रश्न अनुत्तरित ही हैं।

हलायुध के स्थान को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। क्योंकि कुछ लोग जहाँ इनके **'इह हि भवति दण्डकारण्यदेशे स्थितिः, पुण्यभाजां मुनीनां मनोहारिणी'**[२९] के आधार बनाकर इन्हें **दण्डकारण्य** निवासी मानते हैं, वही इनके **'भुवन नमितपाद पद्माभिधा-नाम्बिका, तीर्थयात्रागतानेक सिद्धाकुले'**[३०] पद्यांश के आधार पर अन्य विद्वान् दाक्षिणात्य सिद्ध करते हैं। जबकि कुछ अन्य लोग यह भी सम्भावना व्यक्त करते हैं कि उपर्युक्त पद्यांश में प्रयुक्त 'सिद्वाकुल' किंवा 'सिद्धकुल' से ही मैथिल हलायुध का सिद्धाश्रम-कुल (सिंहासमय) प्रचलित हुआ होगा एवं सोदरपुर मूल की कुलदेवी 'सिद्धेश्वरी' का सम्बन्ध भी इसी के आधार पर हुआ होगा, पर यह एक कठिन कल्पना मात्र है क्योंकि इनका मैथिलत्व असिद्ध है।

कुछ लोगों का यह सन्देह व्यक्त करना कि हलायुध का देश मिथिला भी हो सकता है, जहाँ मीमांसाका प्रचार-प्रसार रहा हो, वे स्वयं भी एक निविष्टि मीमांसक थे जैसा कि इनके इस कथन से प्रतीत भी होता है-

मीमांसारसममृतं पीत्वा
शास्त्रोक्तिः कटुरितरा भाति।
एवं संसदि विदुषां मध्ये
जल्पामो जयपणवं हत्वा।।[३१]

साथ ही-

श्रुतिपरि पूतवक्त्रमतिसुन्दर वाग्विभवं,
तमखिल जैमिनीयमत सागरपारगतम्।
अवितथवृत्तविप्रजनपूजितपादयुगं,
तमखिल नमामि बहुरूपमुदारमतिम्।[३२]

ऐसे लोगों के अनुसार मृतसञ्जीवनी व्याख्या में जिस धरणीधर का उल्लेख हुआ है, वे मैथिल मीमांसक धरणीकर (९ म शतक) से भिन्न नहीं हो सकते। इसी प्रकार बहुरूप विश्वरूप जैसे मैथिल मीमांसाकों के परिवार से वे सम्बद्ध थे। परन्तु केवल इन्हीं आधारों पर इन्हें मैथिल नहीं माना जा सकता, क्योंकि इनके समय पर मीमांसा का प्रचार अन्यत्र भी हो चुका था। धरणीकर मैथिल थे और वे मीमांसक भी थे इसका क्या प्रमाण? इन्होंने स्वयं अपने को बहुरूप का पुत्र तो बताया है- **'पितरमहं नमामि**

बहुरूपमुदारमतिम्', जो किसी विश्वरूप के भाई भी थे, वह भी संजीवनी टीका के अन्तः साक्ष्य से विदित होता है। परन्तु उनके मैथिलत्व का कोई भी प्रमाण प्राप्त नहीं होता। मैथिल बहुरूप मिश्र भी विश्वरूपमिश्र के भाई बताये जाते हैं, जिससे हलायुध को मैथिल बहुरूपमिश्र का पुत्र माना जा सकता है। परन्तु मैथिल विश्वरूप वही हैं जिन्होंने शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ कर सुरेश्वराचार्य बने थे, महामीमांसक कुमारिल के शिष्य थे और याज्ञवल्क्यस्मुति पर बालक्रीड़ा टीका के रचयिता भी थे। उनका समय ईसा के सप्तम-अष्टम शताब्दी निश्चित है, जबकि हलायुध का समय उनके ही ग्रन्थों के आधार पर लगभग तीन-चार सौ वर्ष पश्चात् दशम शतक निर्धारित होता है। अतएव दोनों बहुरूप को एक मानना उचित नहीं होगा। दूसरी बात यदि हलायुध यही होते तो सिंहासमय और सोदरपुर मूलों के बीतीपुरुष हलायुध के बदले बहुरूप होते, क्यों कि बीजी तो वे होते हैं जो ज्ञातनामा आदि पुरुष हुआ करते हैं, जिनके पिता का नाम पञ्जी निर्माण के समय ज्ञात नहीं हुआ करता था।

हलायुध २- एक हलायुध कनसोन के सेनवंशीय हिन्दूराजा बल्लालसेल के पुत्र लक्ष्मणसेन (११८०-१२०० ई.) के धर्माधिकारी और दानाध्यक्ष हुआ करते थे, जिनके दरवार में गीतगोविन्दकार जयदेव, आर्यासप्तशतीकार गोवर्द्धन सहित कतिपय आचार्य भी सम्मानित थे। इतिहासकारों के मत में राजा लक्ष्मणसेन ११७० ई. में अपने पिता बल्लालसेन के निधरोपरान्त गौड़देश के अधिपति बने थे। इन्होंने ३० वर्षों तक मिथिला सहित बंगालपर शासन किया था।[33]

हलायुध अपने समय के प्रमुख वैदिक विद्वान् ही नहीं, बल्कि शैवागम, वैष्णवागम और मीमांसा के मर्मज्ञ पण्डित भी थे। इन्होंने ही अपने ब्राह्मणसर्वस्व में लिखा है-

बाल्ये ख्यापितराजवल्लभपदं शीतांशुबिम्बोज्वल-,
च्छास्त्रोत्सिक्तमहामहत्तकपदं दत्वा नवे यौवने।
यस्मै यौवनशेषयोग्यमखिलं क्ष्मापालनारायणः,
श्रीमान्लक्ष्मणसेन नामनृपतिर्धर्माधिकारं ददौ।।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि हलायुध बाल्यकाल में ही राजपण्डित बन गये थे। गौड़ीय नरपति लक्ष्मणसेन के द्वारा तो इन्हें प्रौढ़ावस्था में धर्माधिकारी किंवा महामहत्तक का गौरवपूर्ण पद भी दिया गया था, साथ ही श्वेतच्छत्रधारण करने का अधिकार एवं समुचित मान-सम्मान भी इन्हें प्राप्त था। यहाँ हलायुध स्वयं को राजा लक्ष्मणसेन के दरवार में महामहत्तक के रूप में दिखाते हैं।

परन्तु एक शिलालेख के अनुसार-

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च।।

इस पद्य में लक्ष्मणसेन के सभ्य रहे पाँच कवियों के साथ हलायुध का नाम प्राप्त नहीं होता और न ही इस पद्य में उनके नाम का कहीं सङ्केत ही मिलता है। इतना ही नहीं, कवि जयदेव ने इनका उल्लेख अपने गीतगोविन्दकाव्य में कहीं नहीं किया हैं-

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव जयदेव एव, शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः।

श्रृङ्गरोत्तरसत्प्रमेयचरनैराचार्यगोवर्द्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतधरो धोयी कविक्ष्मापतिः।।

मात्र इसी आधार पर कैसे उस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हलायुध लक्ष्मणसेन के सभ्य नहीं थे, जबकि स्वयं हलायुध ने उपर्युक्त पद्य प्रस्तुत किया है। यह सही है कि इन पद्यों में लक्ष्मणसेन के सभासद रहे अन्य भी कई कवि अचर्चित हैं, जैसे बटुदास, उनके पुत्र सदुक्तिकर्णामृतकार श्रीधरदास आदि। स्मरणीय हो कि ११२७ शकसंवत् (१२०५ ई.) में श्रीधरदास ने इन्हीं के दरवार में सदुक्तिकर्णामृत जैसे सुभाषितसंग्रह की रचना की थी। इस संग्रह ग्रन्थ में श्रीधर ने कतिपय कवियों के काव्य को सङ्कलित किया है, जिनमें हलायुध, महोदधि, विद्यापति, गणपति, जयादित्य आदि कतिपय कवि उल्लेखनीय हैं। इसके आधार पर अनेकों विद्वान् यह कहते हैं कि ये हलायुध और महोदधि श्रीधरदास से प्राचीन हैं। परन्तु स्वयं हलायुध ने अपने ब्राह्मणसर्वस्व में जो **'बाल्ये ख्यातिपराजवल्लभपदं'** आदि पद्य दिया है, उससे कोई सन्देह रह नहीं जाता।

स्मरणीय हो कि हलायुध का जो महामहत्तक विशेषक ऊपर दिया गया है, वह धनाढ्यों को जाने वाली उपाधि है। पञ्जीप्रबन्ध के अनुसार यह महामहत्तक पद अत्यन्त धनी व्यक्ति के लिए योजित होता है, जैसे कि पुरोहितों के लिए 'शर्मा' और दान देने योग्य व्यक्ति के लिए 'प्रतिहस्त' पद का व्यवहार होता है। कहा भी गया है कि-

महत्तको धनाढ्ये स्यात् पञ्ज्यां शर्मा पुरोहित।
दानपात्रे द्विजे चैव प्रतिहस्तो निगद्यते।।

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि हलायुध परम धनाढ्य थे। वे जितने बड़े धनाढ़्य थे, उससे कम भाग्यशाली भी नहीं। विद्वत्ता तो इनमें कूट-कूटकर भरी ही थी, जिन्होंने यजूर्वेद की काण्वसंहिता-भाष्यपर, ब्राह्मणसर्वस्व नामक ग्रन्थ बनाया है। इसके अतिरिक्त इनके छः और सर्वस्वयुक्त ग्रन्थ कहे जाते हैं- मीमांसासर्वस्व, शैवसर्वस्व, शाक्तसर्वस्व, वैष्णवसर्वस्व, कृत्यसर्वस्व तथा गुणिसर्वस्वापरनामक पण्डितसर्वस्व।[४] इन रचनाओं में शुक्लयजुर्वेद की काण्वसंहितापर लिखा गया 'ब्राह्मण-सर्वस्व' नामक भाष्य या उपभाष्य जहाँ प्रकाशित है, वहीं शेष अप्रकाशित और अनुपलब्ध भी। हाँ, जैमिनिसूत्रों के ऊपर अधिकरण क्रम से लिखा गया मीमांसासर्वस्व अवश्य ही उसके चतुर्थपाद के तृतीयाधिकरण तक प्राप्त होता है और जिसका प्रकाशन म.म.डा. उमेशमिश्र के सम्पादन में बिहार-उड़ीशा रिसर्च सोसाइटी पटना के द्वारा हुआ है। जबकि पण्डितसर्वस्व की मातृ का पटना विश्वविद्यालय पुस्तकालय के मातृ का विभाग३५ में सुरक्षित बताई जाती है। हलायुधकृत सभी सर्वस्वों का उल्लेख उनकी अन्तिम रचना ब्राह्मण सर्वस्व में प्राप्त होने से इन कृतियों की प्रामाणिकता भी निश्चय ही अक्षूण्ण मानी जा सकती है। 'डिस्क्रिप्टिभ मैन्युस्क्रिप्ट इन मिथिला' नामक हस्तलेख-सूची में किसी

हलायुध की पारस्कर गृह्यसूत्र पर की गई टीका का भी उल्लेख मिलता है। न जाने यह ब्राह्मण सर्वस्वकार की रचना है अथवा किसी अन्य हलायुध की, इदमित्थंतया कहा नहीं जा सकता, परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इसकी भी रचना सर्वस्वकार ने ही की होगी।

आप किसी धनञ्जय-जानकी के पुत्र थे तथा आपका गोत्र वत्स और शाखा (यजुर्वेद की) काण्व थी। लक्ष्मणसेन के सभासद होने के कारण इनका समय १२वीं - १३वीं शताब्दी माना गया है, जबकि कुछ लोगों के मत में आप बंगाल प्रान्तीय भट्ट ब्राह्मण थे, तो कुछ के मत में कलिङ्गदेशीय। म.म. पं. परमेश्वर झा३६ इन्हें बंगदेशीय ही मानते हैं तथा उनके मत में १३वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्थित त्रिकाण्ड शेष के कर्त्ता पुरुषोत्तमदेव (शकस की १४वीं सदी में स्थित पूरी के राजा) इन्हीं के वंशज थे। यह भी स्मरण रहे कि पुरुषोत्तमदेव पर्यालोचन के आधार पर उसकी परिपाटी को मैथिल निबन्धकारों से मेल खाने के कारण इन्हें मैथिल मानते हैं। मिथिला में जिस प्रकार कर्मकाण्ड का विधान पाया जाता है, तत्समान विधान का उल्लेख इन्होंने अपने ग्रन्थ में किया है। यह भी स्मरण रहे कि यही कर्मकाण्डी विधान उत्कल में भी रहा है।

खृष्टाब्द दशमी-ग्यारहवीं सदी के आसपास विद्यमान रहे, किन्तु कृष्णराजतृतीय एवं राजा मुञ्ज के सभासद अभिधानरत्नकोशकार हलायुध के प्राय: ५०-६० वर्ष अन्तराल पर, परन्तु परवर्ती एक और **हलायुध ३** हुए हैं, जिनका धर्मविवेककाव्य कहा जाता है। कुछ लोग जहाँ इस कृति को मुञ्ज के दरवारी हलायुध की रचना मानते हैं, वहीं कुछ समालोचकों के मत में धर्मविवेककाव्य के रचयिता हलायुध, उनसे भिन्न और सौ वर्ष कनिष्ठ यानि ११-१२वीं सदी में स्थित थे। इनके कथनानुसार इन दोनों का समय तो लगभग एक है, पर पितृनाम में अन्तर पाया जाता है। न तो उन्होंने इनके पिता का नाम स्पष्ट किया है और न हमें यह कृति उपलब्ध हुई है, जिससे निष्कर्ष निकालना सम्भव नहीं। इन सबसे भिन्न एक **हलायुध ४** वृत्तारत्नाकर के प्रसिद्ध टीकाकार रामचन्द्र कवि के भाई थे, जिनका समय १४वीं शताब्दी माना जाता है। क्योंकि रामचन्द्र कवि ने इसी समय अपनी टीका की रचना की थी और अपनी टीका में इन्होंने हलायुध को बड़े भाई के साथ-साथ अपने गुरु के रूप में भी स्मरण किया है। ये लोग वशिष्ठ गोत्रीय थे, जिसका परिचय भी उसी टीका से चल जाता है। **हलायुध ५**- सिंहासमय (सिंहाश्रम) एवं उसी मूल से निकला परवर्ती सोदरपुर मूल के जिस हलायुध को अर्थात् इन दोनों मूलों का बीजीपुरुष **हलायुध ५** इन सबसे सर्वथा भिन्न, सिंहाश्रम ग्राम निवासी तथा सामवेदीय शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न थे। इनके पिता का नाम अज्ञात है, तभी तो इन्हें मूल-प्रवर्तक किंवा उस मूल का बीजी पुरुष माना गया है।

हलायुध सिंहासमय एवं सोदरपुर मूलों के

बीजीपुरुष के रूप में उल्लिखित हैं। कवीश्वर चन्दा झा के मत में पञ्जीप्रबन्ध निर्माण से बहुत पहले ही हलायुध 'प्रतिसरा' में रहा करते थे, जो बाद में वहाँ से 'सिंहाश्रम' (बाद का सिंहासमय) आकर बस गए। ये ही वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित् और उदयनाचार्य के शिष्य थे। इनके मत में हलायुध के पूर्वज दीर्घघोष (दोर्घोदय/दिघबय) मूलक थे, जिन लोगों का निवास दिघबाड़ा था। वहीं से एक शाखा प्रतिसरा आकर बस गयी थी। इसी प्रतिसरा से एक शाखा सिंहासमय आकर बसी और पञ्जी-निर्माण के समय हलायुध वंशज यहीं रहा करते थे। श्रीनिवास मिश्र का एक ग्रन्थ है कालिदासकृत सेतुबन्ध काव्य की टीका सेतुदर्पणी, जिसको उद्धृत करते हुए चन्दा झा ने ये बातें लिखी थी।[17] इन आधारों के लेखकों का यह भी मानना है। कि 'पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः' के 'पुरुषसिंह' पद से 'सिंहाश्रम' शब्द बना है अर्थात् हलायुध इतने बड़े धानढ्य व्यक्ति थे, दो-दो मूलों के बीजीपुरुष थे, मूर्द्धन्य और ख्यातिप्राप्त विद्वान् थे कि समाज में वे पुरुषसिंह के समान प्रसिद्ध हो गए थे। साथ ही जिस गाँव में वे निवास करते थे, वह पुरुषसिंह-आश्रम कहलाता था। यह सर्वथा काल्पनिक विचार ही नहीं भ्रामक भी है, जबकि सिंहाश्रमग्राम को किसी ने सङ्गीतरत्नाकरकार सिंहभूपाल के नाम पर पड़ा माना है। इसमें भी मुझे सन्देह प्रतीत होता है। दूसरी बात हलायुध को जो दो-दो कुलों का बीजीपुरुष कहा गया है, वह भी सत्य प्रतीत नहीं लगता। हलायुध तो मात्र एक ही मूल 'सिंहासमय' के बीती थे, हाँ उनके ही वंशज रत्नेश्वर के तीन पुत्र, क्रमशः म.म. हलेश्वर, म.म. सुरेश्वर और म.म. जीवेश्वर अवश्य संयुक्त रूप से सोदरपुर ग्रामोपार्जक हुए, जहाँ से सोदरपुर नामक मूल का निर्माण हुआ। इससे पहले हलायुध के भी जो वंशज (रत्नेश्वर के तीनों पुत्रों को छोड़, वल्कि ये तीनों भाई भी, इनके पुत्र-पौत्र से भले ही सोदरपुर वंश कहलाने लगा हो)थे अथवा उनकी सन्तति (डॉ. रामकिशेर झा प्रभूति) आज विद्यमान हैं, सब सिंहाश्रम-मूलक ही कहलाते हैं, ने कि सोदरपुर मूलक। अर्थात् रत्नेश्वर ही भाई रामेश्वर वंशज (उन दिनों स्वयं रत्नेश्वर भी और सोदरपुर ग्रामोपार्जन से पहले उनके तीनों पुत्र भी) आज भी सिंहाश्रम (सिंहासमय) मूलक ही कहलाते हैं। भले ही मूलपुरुष के रूप में 'हलायुध' का नाम मिलता हो, पर केवल 'सोदरपुर' मूल के बीजी यदि कोई कहलाएंगे तो वे हैं हलेश्वरादि तीनों भाई। यह बात अलग है कि इन तीनों भाईयों के वंशज भी सोदरपुर के अन्य शाखावलम्बी हो गए हैं। परन्तु यह तो सर्वथा सत्य है कि हलायुध किसी भी रूप में, सोदरपुर समान भी नहीं, गंगुलिवार मूल के बीजी पुरुष नहीं हैं, जैसा कि किसी ने कहा है। इतना ही नहीं, उस मूल में किसी समय इस नाम का व्यक्ति भी नहीं हुआ है। अस्तु,

म.म. परमेश्वर झा जी के अनुसार सिंहाश्रम (सिंहासमय) के हलायुध की सन्तति में रत्नेश्वर मिश्र हुए हैं, जिनकी सन्तति 'ठाकुर' से 'मिश्र'

और कितने उनमें 'झा' भी कहलाये।[३८] डा. जगदीश मिश्र के अनुसार हलायुध जिस सिंहाश्रम (सिंहासमय) ग्राम के निवासी थे, वह ग्राम आजकल रनवे-केओटी के पास अव्यवहित पश्चिम में 'सिंहासो' नामक ग्राम से जाना जाता है।[३९]

डॉ. शशिनाथ झा के मत में जिस महोदधि का उल्लेख श्रीकृष्णमिश्र अपने प्रबोधन्द्रोदय नाटक में करते हैं, वे हलायुध ही पुत्र हैं इसमें क्या प्रमाण है, हम नहीं जानते। पर उनका यह कहना अवश्य समीचीन प्रतीत होता है कि हलायुधसुत महोदधि के प्रपौत्र गाङ्गूके पौत्र थे रत्नेश्वर, जिन्होंने राजा रत्नेश्वरसिंह के सभासद रहकर सरस्वती-कण्ठाभरण पर टीका लिखी थी।

हलायुध का निवास स्थान 'सिंहाश्रम' अथवा 'सिंहासमय' वर्तमान में दरभङ्गा से कपिलेश्वर स्थान जाने के मार्ग में रनवे-केओटी के पास अव्यवहित पश्चिम में अवस्थित है, जो आज 'सिंहासो' कहलाता है। परन्तु डा. विश्वम्भरनाथ गिरि, जिन्होंने शङ्करमिश्रकृत वादिविनोदपर शोधकार्य भी किया है, शङ्करमिश्र के प्रसङ्ग लिखते हुए उनके पूर्वज हलायुध की भी चर्चा करते हैं। फिर 'सिंहासमय' के पर्याय रूप में उन्होंने 'सीवाज' का उल्लेख किया है,[४०] जो हमें सर्वथा भ्रामक-सा प्रतीत होता है। क्योंकि आज भी उस गाँव का वही नाम, थोडा परिवर्तित होकर 'सिंहासो' पाया जाता है तथा अन्यत्र कहीं भी सीवाज का उल्लेख देखने को नहीं मिलता। यही सिंहासमय (वर्तमान सिंहासो) इन लोगों का प्राचीन मूल भी था, जैसा कि कहा जा चुका है कि यही मूल कालान्तर में विभक्त होकर दो पृथक्-पृथक् मूलों में बदल गया- सिंहासमय और सोदरपुर।

परन्तु पं. गोविन्द झा[४१] का यह मानना कि 'हलायुध किसी सोदरपुर नामक ग्राम के वासी थे, जो आज कहाँ किसी रूप में है पता नहीं। तथा हलायुध से विश्वनाथ तक कुल नव पीढी के लोग इसी सोदरपुर ग्राम के वासी थे'- चिन्त्य प्रतीत होता है, क्योंकि हलायुध के समय यह सोदरपुर ग्राम था ही नहीं। साथ ही इसी बात को वे एक अन्य लेख में भी व्यक्त करते हैं कि सोदरपुर मूल के बीजीपुरुष (प्राचीनतम ज्ञातनामा पूर्वजं) हलायुध, सोदरपुर नामक किसी ग्राम के वासी थे तथा उनसे लेकर ९ पीढ़ी पश्चात् विश्वनाथ पर्यन्त उसी सोदरपुर ग्राम में रहा करते थे। फिर तेरहवीं शती में विश्वनाथ के पाँचों पुत्र पाँच अलग-अलग ग्रामों में जा वसे। अर्थात् सरिसब, दिगौन, कटका, रैयाम तथा भौआल। इनमें से रविनाथ सरिसब आकर बसे थे।[४२] इस विषय के चिन्त्य होने का कारण यह है कि सोदरपुर वंश शुरू होता है हलेश्वर, सुरेश्वर और जीवेश्वर, जो 'सिंहाश्रमसं बीजी महामहोपाध्याय हलायुध' की सातवीं पीढ़ी पर उत्पन्न रत्नेश्वर के पुत्र थे, अर्थात् हलायुध से आठवीं पीढ़ी पर। इनसे पहले यह सोदरपुर मूल था ही नहीं, तो फिर हलायुध उस गाँव का निवासी मान लिया जाय तो फिर सिंहासमय मूल का क्या

होगा? कवीश्वर चन्दा झा ने जिस हलायुध (उदयनाचार्य के शिष्य) को सिंहासमय ग्रामनिवासी कहा है, और जिनका समय भी उन्होंने १०म-११म शतक माना है, वह कौन थे?

अस्तु, जो भी हो, पर ये सिंहाश्रम वाले हलायुध, पंचम हलायुध हैं, जिनकी कोई भी रचना प्राप्त नहीं होती। परन्तु इन्हें मिथिला के प्रामाणिक कौलिक दस्तावेज पञ्जीप्रबन्ध में अवश्य ही 'महामहोपाध्याय' विरुद के साथ दरसाया गया है, जिससे इनका महाविद्वान् होना तो निश्चित होता ही है। साथ ही जिन-जिन रचनाओं को इनकी कृति मानी गई है, निश्चित रूप से सभी के सभी इनसे भिन्न एवं अन्य हलायुधों की रही हैं, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

अतएव निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में न्यूनतम तीन और अधिकतम पाँच हलायुध तो हुए ही हैं, जिनमें प्रथम हैं अभिधानरत्नकोश (हलायुधकोश), कविरहस्य, पिंगलसूत्र पर मृतसञ्जीवनी टीका लिखने वाले शाण्डिल्य गोत्रीय बहुरूप के पुत्र, जो राष्ट्रकूटवंशीय कृष्णराज तृतीय (९९७-१०१३ वि.सं.) एवं वाक्पतिराज धारानरेश राजा मुञ्ज (१०३२-१०५२ वि. सं.) के दरवार में सम्मानित थे। द्वितीय हलायुध हैं इन्हीं के कनिष्ठ समसामयिक, अथवा कुछ अनन्तर, जिन्होंने धर्मविवेक काव्य की रचना की थी। तीसरे हैं वेदशास्त्रतत्त्वविद् हलायुध, जो वत्सगोत्रीय यजुर्वेद के काण्वशाखावलम्बी धनञ्जय-जानकी के पुत्र थे। ये राजा लक्ष्मणसेन (११७५-१२०० ई.) के सभासद भी थे, वहीं इन्होंने ब्राह्मण सर्वस्व, मीमांसासर्वस्व आदि सात 'सर्वस्वा'न्त कृतियों की रचना की है। चौथे हलायुध हैं वृत्तरत्नाकर के टीकाकार १४वीं शताब्दी वशिष्ठ गौत्रीय रामचन्द्र कवि के अग्रज एवं गुरु। जबकि पञ्चम हलायुध भी शाण्डिल्य गौत्रीय, किन्तु मैथिल हैं। इनकी कोई रचना न तो मिलती है और न किसी रचना का प्रामाणिक उल्लेख ही कहीं प्राप्त होता है। इनके पिता का नाम अज्ञात है, तभी तो ये सिंहासमय मूल के बीजी पुरुष हुए। गंगुलिवार या दीर्घघोष मूल में हलायुध के होने की बात सर्वथा काल्पनिक है। सम्भव है कोई हलायुध नाम का व्यक्ति मिथिला में और भी हुए हों, पर उनकी ख्याति किसी मूल के बीजी पुरुष के रूप में अथवा ग्रन्थकार के रूप में हो, ऐसा दिखाई नहीं देता।

महीधर- पञ्जी प्रबन्ध के आधार पर[43] महीधर सिंहासमय एवं सोदरपुर मूलक हलायुध के प्रपौत्र अर्थात् हलायुध के पुत्र महोदधि के पौत्र और यज्ञेश्वर के पुत्र कहे गए हैं। जबकि इन्हें उस कुल में किसी ने[44] परिगणित ही नहीं किया है। तात्पर्य यह कि पंजी-प्रबन्ध के अनुसार महीधर के पुत्र का गांगू उपनामक गङ्गेश्वर था, परन्तु 'श्रद्धाजलि' नामक स्मृति ग्रन्थ में प्रकाशित एक लेख में यज्ञेश्वर पौत्र गङ्गेश्वर ही उनका पुत्र बना दिया गया है। जबकि महीधर को हलायुध-कुलका ही मानकर उन्हें मन्महोदधिकार भी मान

लिय गया है।[५५] साथ ही कुछ लोग भ्रमवश मन्त्र महोदधि को हलायुध के पुत्र महोदधिकृत भी मानते हैं। किन्तु मन्त्रमहोदधि महीधर-प्रणीत तान्त्रिकग्रन्थ है, इसमें कतई कोई सन्देह नहीं। जो लोग इस ग्रन्थ को सिंहासन मूलक हलायुध के प्रपौत्र की कृति मानते हैं, निश्चय ही वे एक भ्रम उत्पन्न करते हैं। १६४५ विक्रम में लिखा गया वह ग्रन्थ दक्षिणमार्गी शाक्तशाखा सम्बन्धी है, जिसमें स्वयं लेखक अपने को वत्सगोत्रीय फन्नूभट्ट का आत्मज मानता है। अहिच्छत्रवंशीय ब्रह्मण महीधर के पिता का मूल नाम रामदास था और इनके पितामह थे रत्नाकरभट्ट, जबकि महीधर के पुत्र का नाम कल्याण भट्ट था। ये मन्त्रमहोदधि-कार महीधर, निश्चय ही यज्ञेश्वर-सुत महीधर से भिन्न और परवर्ती सिद्ध होते हैं। हलायुध का अनुमानित समय (निश्चित समय ज्ञात नहीं), ईसा की ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी का मध्य कहा जा सकता है, पञ्जीनिर्माण से पहले, परन्तु सौ-डेढ़ सौ वर्ष से अधिक नहीं। पंजीका निर्माण हुआ मिथिलेश हरिसिंहदेव समय में, जो निर्विवाद सत्य है। पञ्जी के आरम्भिक पद्य[५६] के आधार पर १२१६ शाके (१२९७ ई.) में इसका निर्माण हुआ था। अतएव हलायुध के प्रपौत्र महीधर समय भी इससे पहले ही रहा होगा अर्थात् हलायुध के जन्म से सौ वर्ष के भीतर ही। जबकि मन्त्रमहोदधिकार का समय १५८८ ई. निश्चित होता है। एक अनुमान के आधार पर दोनों महीधरों के बीच लगभग ३०० वर्ष का अन्तर आता है।

२५ तरंगों में विभाजित यह 'मन्त्रमहोदधि' एक तान्त्रिक ग्रन्थ है, जिसका मन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में सर्वोपरि स्थान है। इसमें सभी देवी-देवताओं के मन्त्र, मुद्रा आदि तो वर्णित हैं हीं, वल्कि मन्त्रयोग के १६ अंगों का प्रतिपादन, साधना, सिद्धान्त, आसन, पंचांगसेवन, आचार (वामाचर-दक्षिणाचार और दिव्याचार), धारणा, दिव्यदेश-सेवन, प्राणक्रिया, तर्पण, हवन, बलि, जाग, जप, ध्यान, समाधि, मन्त्रसाधना, मन्त्रों की कुल्लुका, दोषनिवृत्ति के उपाय, दीक्षा आदि कतिपय विषय भी अलग अलग तरंगों में प्रतिपादित हुए हैं। मंगलाचरण में ग्रन्थकार कहते हैं-

प्रणम्य लक्ष्मीनृहरिं महागणपतिं गुरुम्।
तन्त्राण्यनेकान्यालोक्य वक्ष्ये मन्त्रमहोदधिम्।।

इस अपूर्व आकार ग्रन्थ की रचना आचार्य महीधर ने काशी में रहते हुए संवत् १६४५ में की थी। महीधर अहिच्छत्रवंश के वत्सगोत्रीय आचार्य थे, जिनके पिता-पितामह का नाम क्रमशः फन्नूभट्ट एवं रत्नाकर भट्ट था। इन सब विषयों का उल्लेख और अपना सुविस्तृत परिचय ग्रन्थ की पुष्पिका में आपने १२ पद्यों (१२१-१३२) के द्वारा दिया भी है। जैसे-

अहिच्छत्रद्विजचछत्रवत्सगोत्रसमुद्भवः।
आसीद्रत्नाकरो नाम विद्वान्ख्यातो धरातले।।
तत्तनूजो रामभक्तः फन्नूभट्टाभिधोऽभवत्।
महीधरस्तदुत्पन्नः संसारासारतां विदन्।।
निजदेशं परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम्।
सेवमानो नरहरिं तन्त्रग्रन्थमिमं व्यधात्।।
एकग्रन्थे स्थितं सर्वं मन्त्राणां सारमिच्छुभिः।

सम्प्रार्थितः स्वमत्यासौ नाम्ना मन्त्रमहोदधिः ।।[४७]

इसकी रचना कब और कहाँ हुई, इस सम्बन्ध में २५वें तरंग के १३२ वाँ श्लोक द्रष्टव्य है–

अब्दे विक्रमतो जाते बाणवेदनृपैर्मिते।
ज्येष्ठाष्टम्यां शिस्याग्रे पूर्णो मन्त्रमहोदधिः ।।

अर्थात् १६४५ विक्रमसंवत् के ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी को इसकी रचना वाराणेसी में विश्वनाथ के सान्निध्य में पूर्ण हुई थी। यहाँ 'शिवस्याग्रे' पद से यदि किसी को वाराणसी के बाबा विश्वनाथ में सन्देह हो तो वे इसके आगे के पद्य १२७ से लेकर १३१ तक देख सकते हैं, जहाँ काशी के अन्य सभी देवी–देवतओं (ढुंढिराज, अन्नपूर्ण आदि) से कल्याण की कामना की गई है।

यही महीधर यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के 'वेददीप' भाष्यकार भी हैं, जिस संहितापर आचार्य सायण का भाष्य प्राप्त नहीं होता। उन्होंने शायद लिखा भी नहीं था, पर उव्वट और महीधर के भाष्य ही इस पर प्रामाणिक रूप से उपलब्ध और प्रचलित हैं। यह बात भिन्न है कि इनका वेददीपभाष्यकार और मन्त्रमहोदधिकार को पृथक–पृथक भी मानते हैं। जबकि ये दोनों सर्वथा एक हैं, अभिन्न हैं, जिसका साक्ष्य है दोनों ग्रन्थों में दिये गए समान मङ्गलाचरण– **'प्रणम्य लक्ष्मीं नृहरिं गणेशं भाष्यं विलोक्यौव्वटमाधवीयम्'** (वेददीप) तथा **'प्रणम्य लक्ष्मीं नृहरिं महागणपतिं गुरुम्'** (मन्त्रमहोदधि)। ये दोनों महिधर मूलतः तान्त्रिक थे, नृसिंह भगवान् के परम भक्त और उपासक थे, जिनकी आपने अपनी पुस्तकों में खूब स्तुति की है, एक पद्य तो आपने सातों विभक्ति में उनके नामों को देते हुए लिखा भी है। आपके ग्रन्थों से यह भी विदित होता है केशवपुत्र रत्नेश्वर आपके गुरु थे।

इनके समय को लेकर अलग–अलग काल–खण्डों को (ईसा के सप्तम शतक, द्वादश शतक) बताया जाता रहा है, पर हमने उक्त दोनों ग्रन्थों के अन्तः ब्राह्य साक्ष्यों के आधार पर उपर्यूक्त समय दिया है। यह बात भी अवधेय है कि मन्त्रमहोदधिका उपयोग सम्पूर्ण भारत में शाक्त और शैव दोनों समान रूप से करते हैं और इस पर लेखक की एक 'नौका' नाम्नि स्वोपज्ञटीका भी उपलब्ध होती है। अतः यह कहना सर्वथा भ्रामक और असत्य है कि मन्त्रमहोदधिकार महीधर ही हलायुध प्रपौत्र थे।

– आचार्य, साहित्य विभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय,
श्रीसदाशिव परिसर, पुरी – 752 001 (ओड़ीशा)

---

१. नि.म.म., तीर्थनाथ पुस्तकालय, दीप, २००९, पृ. १६०

२. इस वंश के बीजीपुरुष हैं गंगाधर, न कि हलायुध। पञ्जी में स्पष्ट कहा है– 'गंगोली/गंगुलिवारसं बीजी गंगाधरः, गंगाधर सुतौ वीर–नारायणौ शूलपाणि....' योगनाथ झा, प्रथमभाग, पृ. ७१

३. नि.म.म. पृ. १६० तथा आनन्दमन्दाकिनी, पृ. ५५

४. पृ. १४८ ५. पृ. १६० ६. पृ. १६७

७. पृ. १६० ८. आनन्दमन्दाकिनी, पृ. ३२

९. साहित्यिकी प्रकाशन, सरिसब-पाही, पृ. ४४

१०. जसमन्त मिश्र अभिनन्दन ग्रन्थ 'सारस्वत कुसुमाञ्जलि', दरभंगा, पृ. १००

११. विश्वेश्वर मिश्र, छह एक अयाची तोहींटा, साहित्यिकी प्रकाशन, पृ. १९

१२. वही, पृ. २५,३०

१३. कलकत्ता, जुलाई-अगस्त २०१६

१४. जो कि रसमञ्जरी आदि के कर्त्ता हैं और जिनका समय ईसा की १६वीं सदीं निर्धारित होता है

१५. मगधम्, संस्कृत पत्रिका, तृतीय अंक, आरा, १९७३ में प्रकाशित डॉ. महाप्रभुलाल गोस्वामी का लेख

१६. जिज्ञासु या शोधकर्त्ता मिथिलादर्शन के सितम्बर-अक्टूबर २०१६ अंक में प्रकाशित प्रतिक्रिया

१७. छह एक अयाची तोहींटा, पृ. ३०, जगदीश मिश्र (विभिन्न लेख) तथा मिथिलादर्शन में 'समीपेषु' भी देखें।

१८. सं.सा.का.इ.पृ. ४९० १९. संस्कृतव्या शा.का इ. भाग-२, पृ. ७८

२०. पिंगलछन्द सूत्र की मृतसञ्जीवनी टीका - ७/१७

२१. पिंगलछन्दः सूत्र की मृतसञ्जीवनी टीका - ७/२०

२२. सं.व्या.शा. का इति., भाग-१ युधिष्ठिर मीमांसक, पृ. ४५२ २३. मृतसञ्जीवनी टीका-४/१९

२४. वही, ४/२० २५. वही, ५/३४ २६. वही, ७/५

२७. वही, ८/१२ २८. वही, ५/२४ २९. वही, ७/३३

३०. वही, ७/३३ ३१. वही, ६/१० ३२. वही, ६/१०

३३. प्राचीन भारत का इतिहास, डॉ. स्मिथ, तृतीय संस्करण, पृ. ४०३-४०७

३४. पटनाविश्वविं में मातृ का संरक्षित " ३५. पाण्डुलिपि सं. ३/११/५९८

३६. मि.त.वि.पृ. ८९ ३९. श्रद्धाञ्जलि, धर्मनाथ झा. स्मृ. ग्र., पृ. ४१

४०. सारस्वत कुसुमाञ्जलि - १६३ ४१. अतीतालोक, पृ. ४०, २००५ ई.

४२. आनन्दमन्दाकिनी, पृ. ३२

४३. द्रष्टव्य पञ्जीप्रबन्ध में सोदरपुर मूलका उतेढ़

४४. श्रद्धाञ्जलि, धर्मनाथ झा. स्मृ. ग्र. में डॉ. जगदीश मिश्र का लेख, पृ. ४०, साहित्यिकी प्रकाशन

४५. वही, पृ. ४१

४६. शाके श्रीहरिसिंहदेव नृपतेर्भूयार्कतुल्ये जनिः, तस्मादन्तमितेऽब्दके द्विजगणैः पञ्जीप्रबन्धः कृतः।
तस्माद्वै द्विजवंशबीजिकलितं यद्विश्वचक्रं पुरा, तद्विप्राय समर्पितं सुकृतिने शान्ताय सर्वार्थिने।।
ब्राह्मणानां समुत्पत्तिं तद्बीजिकथनं तथा। करोमि रघुदेवाख्यः पाण्डुः पञ्जीविनिश्चयम्।।

४७. तरंग - २५, श्लोक - १२१-१२५

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

उपासना का समय विधि एवं फल

- सत्यदेव सिंह

प्रत्येक मनुष्य को शक्ति और सुख प्राप्ति के लिए वेद के मार्ग पर चलना ही होगा, वेद मार्ग से ही मानव का कल्याण-उत्थान और समस्याओं का समाधान होगा, ऐसा मेरा निश्चित विश्वास है। प्रभु पुत्रों! शान्ति चाहिए तो वेद की बात मानो और 'वेद' वेद प्रचार के लिए जो कुछ भी कर सकते हो, अवश्य करो। प्रभु सभी का कल्याण करें।

ये वचन महात्मा 'आनन्द' स्वामी जी ने चतुर्वेद शतकम् नामक पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर 'आशीर्वचन' के रूप में कहे हैं। अतः वेद में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि-

वेदाहमेवं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽति मृत्सुमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।[1]

जिज्ञासु पुरुष को वेद कह रहा है कि हे जिज्ञासु साधक! **अहम्** = मैं जिस, **एतम्** = पूर्वाक्त (परमात्मा), **महात्तम** = बड़े-बड़े गुणों से युक्त, **आदित्यवर्ण** = सूर्य के समान प्रकाश स्वरूप, **तमस** = अज्ञान, अन्धकार से, **परस्तात्** = पृथक् वर्तमान, **पुरुषम्** = पूर्ण परमात्मा को, **वेद** = जनता हूँ, **तम् एव** = उसी को, **विदित्वा**= जानकर आप, **मृत्युम्** = दुःखप्रद मरण को, **अति एति** = उल्लंघन कर जाते हो किन्तु, **अन्यः** = इससे भिन्न, **पन्था** = मार्ग, **अयनाय** = अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिए, **न विद्यते** = विद्यमान नहीं है। वेद की घोषणा है परमात्मा परब्रह्मा के ज्ञान और उनकी कृपा के बिना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता। **तमेव विदित्वा अति मृत्येमति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय** उस परब्रह्म परमात्मा को जान लेने पर ही जीव मृत्यु को उल्लंघन कर सकता है, अन्यथा नहीं, क्योंकि **नाऽन्यः, पन्थाः, विद्यतेऽयनाय** बिना परमेश्वर की भक्ति वा उपासना और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग कोई नहीं है, ऐसी वेद की दृढ आज्ञा है। अतः सब मनुष्यों को इसी में बर्तना चाहिए और सब पाखण्ड व जंजाल छोड़ देना चाहिए।

सभी शास्त्र, महापुरुष एवं साधु-सन्तजन कहते आये हैं कि परमात्मा या मोक्ष की प्राप्ति के लिए ध्यान-उपासना करना अत्यन्त आवश्यक है, अतः उपासना अवश्य ही प्रतिदिन करनी चाहिए। अब मन में प्रश्न यह उठता है कि ध्यान-उपासना किस समय और कैसे करें? यह एक विचारधीण विषय है। इस सम्बन्ध में वेद की आज्ञा है कि-

नाम नाम्ना जोहवीति पुरासूर्यात् पुरोषसः।
यदजः प्रथमं संबभूव सहतत्स्वराज्यमियाय
यस्मान्नान्यत्परमस्तिभूतम्।[2]

अर्थात् - **पुरासूर्यात्** = सूर्यास्त से पूर्व, उषस: पुरा = उषा से पूर्व, नाम = नमनीय परब्रह्म परमेश्वर को, **नाम्ना** = उसके ओंकार नाम द्वारा, **जोहवीति** = साधक, बार-बार पुकारता है, **यदज:** = अजन्मा जो, **प्रथमं संबभूव** = पहले समता से युक्त होता है, **सहतत्** = वह सचमुच उस, **स्वाराज्यम् इयाय** = स्वराज्य को प्राप्त करता है। **यस्मात् परम्** = जिससे श्रेष्ठ अन्यत् **भूतम्**= दूसरा तत्व, **न अस्ति** = नहीं है।

इस मन्त्र को हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि ईश्वर परब्रह्म या परमेश्वर की उपासना हमें उषा से पूर्व और सूर्यास्त से पूर्व करनी चाहिए। प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त और सायं सन्धयाकाल, ये दोनों ऐसे समय हैं जबकि ब्राह्य प्रकृति समता का रूप धारण कर रही होती है। मनुष्य के शरीर के अन्दर प्राण भी समता की ओर अग्रसर हो रहे होते हैं। ध्यानियों व योगियों व साधकों का अनुभव बताता है कि ईश्वर के प्रति ध्यान उस समय ठीक-ठीक लगता है, जब सूर्य स्वर (दाहिनी नासिका, से श्वास) और चन्द्रस्वर (बायीं नासिका का श्वास) दोनों स्वर चल रहें हो, इन दोनों के एक साथ चलने में समता और शान्ति की वृद्धि होती है। यदि सूर्य स्वर चल रहा हो तो शरीर में उष्णता अधिक हो जाती है और यदि चन्द्र स्वर चल रहा हो तो शीत बढ़ जाता है। जब दोनों समान रूप से चलते हों तो न शीत बढ़ा होता है और ना ही उष्णता जोर दे रही होती है, अपितु शरीर में समता होती है, और मन में भी शान्ति की वृद्धि हो रही होती है। अत: समता प्राप्ति के लिए यह समय अत्यन्त उपयुक्त है।

उपासना के सम्बन्ध में ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में सूक्त प्रथम सातवें मन्त्र में आदेश दिया गया है कि-

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषा वस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि।।[3]

पदार्थ :- अग्ने = हे परमेश्वर। **दिवे दिवे** = सब दिनों में, **धिया** = अपनी बुद्धि और कर्मों से, **वयम्**= हम उपासकगण, **नम:**=नम्रता पूर्वक आपको नमस्कार आदि, **भरन्त**=धारण करते हुए, **त्वा** = आपके, **उप**=समीप, **आ+इमाति**=प्राप्त होते हैं, **दोषा**=रात्रि में और, **वस्त**=दिन के समय में।

भावार्थ- हे अग्ने! अर्थात् सबके उपासनीय प्रभो! हम सब आपके मुख्य नाम **ओ३म** और गायत्री आदि वेद मन्त्रों के द्वारा आपकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना प्रतिदिन किया करें। यदि सब दिन न हो सके तो प्रात: व सायं काल में आपकी अर्थात् जगत् पिता परमेश्वर के गुण संकीर्तन रूपी स्तुति, प्रार्थना, उपासना तथा मोक्षादि वर की कामना के साथ किया करें और आपके ध्यान-रूप में अवश्य मन को लगावें, जिससे हम सब का कल्याण हो। अथर्ववेद के मन्त्र में अन्यत्र दूसरी मुख्य बात यह कही गई है कि परब्रह्म परमेश्वर का चिन्तन-मनन-निदिध्यासन या ध्यान किसी नाम के द्वारा किया जाना चाहिए, तो प्रश्न उठता है कि किस नाम से ध्यान या स्मरण करें? इस प्रश्न का उत्तर

हमें यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के १७ वे मन्त्र में स्पष्टत: बताया गया है कि-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म।[४]

पदार्थ- **सत्यस्य** = सत्य स्वरूप परमात्मा वा ज्ञान रूप मोक्ष का, **मुखम्** = द्वार, **हिरण्मयेन** = सोना-चाँदी आदि, **पात्रेण** = दरिद्रता रूपी दु:ख से रक्षक धन सम्पत्ति से, अविहितम् = ढका हुआ हुआ है, **यः असौ** = जो यह, **आदित्ये**=प्रलयकाल में सबका संहार करने वाला जो ईश्वर, उसमें जो, **पुरुषः**=जीव है, सः असौ **अहम्** = सो वह 'मैं' हूँ। **ओ३म्** = सबसे उत्तम वह नाम 'ओ३म' जो, **खम्** = आकाश के सदृश व्यापक और, **ब्रह्म** = सबसे बड़ा हैं।

भावार्थ – सुवर्ण आदि धन से मुक्ति का द्वार ढका हुआ है, इसलिए परमपिता परमात्मा सबसे पहले उन विघ्न – बाधाओं को दूर कीजिए, ताकि मैं साधक। (उपासक) आपको स्मरण कर सकूँ, आपका नित्यप्रति ध्यान कर सकूँ। वह परमपिता परमात्मा आकाश के समान व्यापक और सबसे महान् है। और उस परमात्मा का सबसे उत्तम नाम 'ओ३म' है।

ऋषियों – महर्षियों ने 'ओ३म' परमात्मा का मुख्य नाम बताया है, क्योंकि इसके अर्थों में अन्य सभी अर्थों का समावेश हो जाता है। परमात्मा के अन्य नाम दूसरे पदार्थों के वाचक भी होते हैं, परन्तु 'ओ३म्' नाम केवल ईश्वर का ही वाचक है।

संस्कृत के वैदिक साहित्य में 'ओ३म्' नाम को अत्यन्त पवित्र माना गया है, इसीलिए वेद-मन्त्रों के पाठ करते समय पूर्व में 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण किया जाता है। आइये अब 'ओ३म्' शब्द के बारे में संक्षेपत: जान लेते हैं। 'ओ३म्' की चार मात्रायें हैं, जिनमें तीन प्रकट और एक जिसको अमात्रा कहते हैं, यह अप्रकट मात्रा है ये तीन प्रकट मात्रायें इस प्रकार हैं-

१. **अंकार 'अ'**- अ का उच्चारण करते ही मुँह खुल जाता है। यह मात्रा बताती है कि ईश्वर सृष्टि का खोलने वाला है। जैसे फूल की कली खिल जाती है, इसी प्रकार अव्यक्त सृष्टि परमात्मारूपी कर्ता के द्वारा खोल दी जाती है। सृष्टि के उत्पन्न करने में किस-किस गुण की आवश्यकता होती है, उन सब को बोधं 'अकार' से समझाना चाहिए।

२. **उकार 'उ'**- अ और उ मिलाकर लम्बा हो जाता है। इससे सृष्टि के पालन करने वाले परमात्मा का बोध होता है। 'उ' का उच्चारण करके देखिए। जो मुँह 'अ' कहने पर खुला था वह 'ओ' कहने पर देर तक खुला रहता है। 'अ' से सृष्टि उत्पन्न हुई। 'उ' से जारी रहती है। इसी का नाम 'पालन' है पालन का अर्थ यह है कि जो वस्तु आरम्भ हुई वह नष्ट न होने पावे अर्थात् जारी रहे।

३. **मकार** 'म'- म का उच्चारण करते ही होंठ बन्द हो जाते हैं। **'मकर'** से सृष्टि के प्रलय का बोध होता है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर बनाता भी है, पालन भी करता है और संहार या प्रलय भी करता है। ईश्वर का चिन्तन इन तीनों रूपों में होना चाहिए। केवल उसको कर्ता के रूप में समझाना उसको आधा-अधूरा समझना या गलत सकझना है। वह हमारे जन्म का भी दाता है, जीवन का भी दाता है। और मृत्यु का भी दाता है यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाए तो मृत्यु कोई बुरी चीज नहीं है। यह तो नये जीवन का साधन मात्र है। यदि मृत्यु संसार में न होती तो मनुष्य अपने जीवन से तंग आ जाता। अत: प्रलयकर्ता परमात्मा का चिन्तन करने से उसके प्रति क्रोध का भाव उत्पन्न नहीं करना चाहिए। यह तो परमात्मा की महती कृपा है कि हमारे जीर्ण शरीर को छुडाकर नये शरीर प्रदान करते हैं, जिससे हमारी शक्तियों का पुनविकास करने के लिए अवसर प्राप्त हो सके।

अकार, उकार, मकार से 'ओं' या 'ओम' शब्द बनता है। 'ओ' और 'म' के बीच में तीन का हिन्दी-अंक लगा देते हैं (ओ३म्)। इससे प्रकट होता है कि 'ओ' को दीर्घ नहीं, अपितु प्लुत पढ़ना चाहिए। क्योंकि जन्म और मृत्यु एक क्षण में ही होती है। परन्तु जन्म और मृत्यु के बीच का जीवन बहुत लम्बा होता है। प्लुत 'ओ' इसी बात का द्योतक है।

४. चौथी 'अमात्रा' गुप्त है। इसका अर्थ यह है कि सृष्टि परमात्मा के 'सभी' गुणों का बोध नहीं कराती। सृष्टि स+अन्त = सान्त है, प्रभु अनन्त है। सान्त सृष्टि ईश्वर की ओर संकेत तो कराती है, परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि ईश्वर इतना ही है, इसकी महत्ता अपार है। यह अपारता हम सृष्टि को देखकर नहीं, अपितु अपनी आत्मा में विचार करने से जान सकते हैं। ओ३म् को विस्तृत व्याख्या के लिए माण्डूक्य उपनिषत् का अध्ययन किया जा सकता है।

योग दर्शन में भी परमात्मा का नाम प्रणव- ओ३म् बताया गया है-

तस्य वाचक: प्रणव:[1]

अर्थात्- **तस्य** = उस का, **वाचक** = नाम, (संज्ञा), प्रणव: = ओ३म् है, इसका तात्पर्य यह हुआ कि उस ईश्वर का वाचक = बताने वाला शब्द = नाम प्रणव = ओ३म् है इसका तात्पर्य यह हुआ कि उस ईश्वर का वाचक (बताने वाला), शब्द या नाम प्रणव (ओ३म्) हुआ और नाम - नामी का सम्बन्ध नित्य होता है। उपनिषद् में 'ओ३म्' के द्वारा ध्यान करने का प्रकार इस प्रकार बताया गया है-

धनुर्गृहीत्वौपनियदं महास्त्रं
शरं हुयपासानिशितं संधयीत।
आसम्य तद् भावयतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ।।[2]

यहाँ पर महर्षि अंगिरस् अपने जिज्ञासु शिष्य शौनक को ब्रह्म विद्या को प्राप्त करने का रहस्य बताते हुए उपदेश दे रहे हैं, कि हे सोम्य ! देखो, उपनिषद् प्रोक्त ब्रह्मविद्या रूपी महा-अस्त्र

'धनुष' पकड़ कर उस पर उपासना से तीक्ष्ण किये हुए आत्मारूप शर = बाण को चढ़ा लो, फिर अक्षर = ब्रह्म को लक्ष्य बनाओ और चित्त को ब्रह्मभाव से भावित करके, लक्ष्य पर शर को साधकर छोड़ दो। तदनन्तर शर = बाण अपने आप ब्रह्म अविनाशी प्रभु से जा मिलेगा।

आगे उपनिषत्कार ने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रणव 'ओ३म् नाम' धनुष है, आत्मा शर है, ब्रह्म लक्ष्य है। अप्रमत्त होकर लक्ष्यवेध करो। जैसे शर लक्ष्य में घुसकर तन्मय हो जाता है, वैसे ही तुम्हारा आत्मा ब्रह्मरूप लक्ष्य को वेध करके ब्रह्ममय हो जायेगा।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।।[७]

507, गोदावरी ब्लॉक, अशोका सिटी, गोवर्धन चौक,
कृष्णा नगर, मथुरा - 281004 । मो. 8630506105

---

१. यजु. ३१/८
२. अथर्व. १०/७/३९
३. ऋग्वेद मंत्र १, सूक्त १, मंत्र ७
४. यजु. ४०/१७
५. योगदर्शन १/२७
६. मुण्डकोपनिषद् - २/२/३
७. मुण्डकोपनिषद् - २/२/४

रामचरितमानस में मंदोदरी

– मदन मोहन साह

मयासुर एवं अप्सरा हेमा की पुत्री, लंकापति रावण की पत्नी एवं पंच कन्याओं में एक मन्दोदरी सद्प्रवृति की साधिका है जो अपने पति रावण के हर बुरे कृत्य का विरोध करती है तथा समयानुकूल उचित परामर्श देती है, परन्तु अहंकार वश रावण हर समय उनके कल्याणकारी परामर्श की उपेक्षा करता है और दुष्परिणाम का भुक्तभोगी बनता है। अप्सरा पुत्री होने के फलस्वरूप मन्दोदरी परम सुन्दरी हैं।

अपनी पवित्रता के कारण वह पंच कन्याओं में अपना स्थान पाती है जिसका उल्लेख ब्रह्मपुराण ३.७.२१९ के निम्न श्लोक में है।

अहल्या द्रौपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा।
पंच कन्याः स्मरेतन्नित्य महापातकनाशनम्।।

अर्थात् अहिल्या (ऋषि गौतम की पत्नी) द्रौपदी (पांडवो की पत्नी), तारा (वानरराज बाली की पत्नी), कुंती (पांडु की पत्नी) तथा मंदोदरी (रावण की पत्नी) इन पांच कन्याओं का प्रतिदिन स्मरण करने से सारे पाप धुल जाते हैं।

रामचरितमानस में मन्दोदरी सर्वप्रथम उस समय उपस्थित है जिस समय रावण अशोकवाटिका में अपहृत शोकाकुल सीता को, अपने पक्ष में करना चाहता है जिसका विरोध सीता बड़े ही पुरजोर शब्दों में करती है तो रावण सीताजी को मारने दौड़ता है। उस समय मन्दोदरी रावण को नीतिपूर्ण बातें कहकर समझाने का प्रयास करती है, जिसका वर्णन गोस्वमी तुलसीदास ने सुन्दरकाण्ड में निम्नवत किया है–

सुनत बचन पुनि मारन धाबा।
मयतनयाँ करि नीति बुझावा।।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई।
सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई।।

(सीता के ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय दानव की पुत्री मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझ गया। तब रावण ने राक्षसियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखलाओ।)

श्रीराम दूत हनुमान सीता की खोज करते हुए जब लंका पहुँचते हैं और अशोकवाटिका में शोकाकुल सीता को पा उनका हृदय द्रवित हो जाता है। रावण को जब दूत के बारे में पमा चलता है तो उसके आदेशानुसार हनुमानजी की पूंछ में कपड़ा लपेटकर उसे जला दिय जाता है ताकि हनुमानजी अपने को दंडित समझें, परन्तु हनुमान जी जलती हुई पूंछ से भवन-भवन कूदकर लंका को जलाने लगते हैं और अंत में समुद्र में कूदकर

आग को बुझा लेते हैं। जबसे हनुमानजी लंका को जलाकर गये, तबसे राक्षस भयभीत रहने लगे। अपने-अपने घरों में सब विचार करते हैं कि अब राक्षस कुल की रक्षा नहीं है। जिसके दूत का बल वर्णन नहीं किया जा सकता, उसके स्वयं नगर में आने पर कौन भलाई है। दूतियों से नगर निवासियों के वचन सुनकर मन्दोदरी बहुत ही व्याकुल हो गयी और सम्भावित अवांछित परिस्थितियों का अंदाजा लगाती हुई हाथ जोड़कर पति रावण से प्रार्थना करती हुई कहते है जिसका उल्लेख गोस्वामी जी ने सुन्दर काण्ड में बड़े ही अनोखे प्रकार से किया है।

रहसि जोरि बर पति पग लागी।
बोली बचन नीति रस पागी।।
बंत करष हरि सन परिहरहू।
मोर कहा अति हित हियँ घरहू।।

(वह एकान्त में हाथ जोड़कर पति (रावण) के चरणों लगी और नीतिरस में पगी हुई वाणी बोली - हे प्रियतम! श्रीहरि से विरोध छोड़ दीजिये। मेरे कहने को अत्यन्त ही हितकर जानकर हृदय में धारण कीतिये।)

समुझत जासु दूत कइ करनी।
स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी।।
तासु नारि निज सचिव बोलाई।
पठवहु कंत तो चहहु भनाई।।

(जिनके दूत की करनी का विचार करते ही (स्मरण आते हो) राक्षसों की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, हे प्यारे, स्वामी! यदि भला चाहते हैं तो अपने मन्त्री को बुलाकर उसके साथ उनकी स्त्री को भेज दीजिये।)

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई।
सीता सीत निसा सम आई।।
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें।
हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।।

(सीता आपके कुलरूपी कमलों के वन को दुःख देने वाली जाड़े की रात्रि के समान आयी है। हे नाथ! सुनिये, सीता को दिये (लौटाये) बिना शम्भु और ब्रह्मा के किये भी आपका भला नहीं हो सकता।)

राम बान अहि गन सरिस निकर निसाकर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक।।

(श्रीरामजी के बाण सर्पों के समूह के समान है और राक्षसों के समूह के समान। जबतक वे इन्हें ग्रस नहीं लेते (निगल नहीं जाते) तबतक हठ छोड़कर उपाय कर लीजिये।)

नल-नील एवं वानर सेना द्वारा समुद्र पर बनाए गए बाँध को पारकर जब श्रीराम सेना सहित लंका पहुँच जोते हैं तो लम्बे समय से भूखे-प्यासे वानरों को फल-मूल खाने की अनुमति देते हैं। समुद्र के बाँधे जाने एवं सेना सहित श्रीराम के लंका पहुँचने की बात सुनकर रावण अचम्भित हो जाता है और मन ही मन घबड़ा भी जाता है। यह तीसरा सन्दर्भ है तक गोस्वामी जी की कलम से लंकाकाण्ड में मन्दोदरी अपने पति के चरणों में सिर झुकाकर आँचल पसारते हुए कहती है-

नाथ बयरु कीजे ताही सों।

बुधि बल सकिअ जीति जाही सों।।
तुम्हरि रघुपतिहि अंतर कैसा।
खलु खघोत दिनकरहि जैसा।।

(हे नाथ! वैर उसी के साथ करना चाहिये जिससे बुद्धि और बल के द्वारा जीत सके। आपमें और श्रीरघुनाथ जी में निश्चय ही कैसा अन्तर है जैसा जुगनू और सूर्य में।)

अति बल मधु कैटभ जेहिं मारे।
महाबीर दितिसुत संघारे।।
जेहिं बलि बाधि सहसभुज मारा।
सोइ अवतरेउ हरन महि भारा।।

(जिन्होंने (विष्णुरूप से) अत्यन्त बलवान् मधु और कैटभ (दैत्य) मारे और (वाराह औंर नृसिंह रूप से) महान् शूरवीर दिति के पुत्रों (हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु) का संहार किया, जिन्होंने (वामनरूप से) बलि कों बाँधा और (परशुराम रूप से) सहस्रवाहु को मारा, वे ये (भगवान्) पृथ्वी का भार हरण करने के लिए (राम रूप में) अवतीर्ण (प्रकट) हुए है।)

तासु बिरोध न कीजिअ नाथा।
काल करम जिब जाके इाया।।

(हे नाथ! उनका विरोध न कीजिये, जिनके हाथ में काल, कर्म और जीव सभी हैं।)

रामहि सौपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सतु कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ।

(श्री राम जी के) चरण कमलों में सिर नवाकर (उनकी शरण में जाकर) उनको जानकी जी सौंप दीजिये और आप पुत्र को राज्य देकर बन में जाकर श्रीरघुनाथ जी का भजन कीजिये।

चौथे समय लंकाकाण्ड में ही मन्दोदरी की उपस्थिति का चित्रण उस समय हुआ है जब सोने की लंका का अधिपति रावण चोटी पर बने महल में नाच गान का अखाड़ा देख रहा है उसी समय श्रीराम बाण का संधान (लंका में प्रथमतः) करते हैं और एक ही बाण से रावण के छल-मुकुट और मन्दोदरी के कर्णफूल को काट, जिसकर अपने बाण की शक्ति से परिचय कराते हैं। रावण इस घटना को हल्के में लेता है परंतु मन्दोदरी पुनः चिन्तिन हो पति रावण से विनती करती है-

सजल नयन कह जुग कर जोरी।
सुनहु प्रानपति बिनती मोरी।।
कंत राम बिरोध परिहरहू।
जानि मनुज जनि इठ मन धरहू।।

(नेत्रों में जल भरकर, दोनों हाथ जोड़कर वह (रावण से) कहने लगी- हे प्राणनाथ! मेरी विनती सुनिये। हे प्रियतम! श्रीराम से विरोध छोड़ दीजिये। उन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़े रहिये।)

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहू बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु।।

(मेरे इन वचनों पर विश्वास कीजिये कि वे रघुकुल के शिरोमणि श्रीराम चन्द्र जी विश्वरूप हैं- (यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है) वेद जिनके अंग-अंग में लोकों की कल्पना करते हैं।)

पद पाताल सीस अज धामा।
अपर लोक अंग अंग बिश्रामा।।

भृकुटि बिलास भयंकर काला।

नयन दिवाकर कच घन माला।।

(पाताल (जिन विश्वरूप भगवान् का) चरण है, ब्रहम्लोक सिर है, अन्य (बीच के सब) लोकों का विश्राम (स्थिति) जिनके अन्य भिन्न-भिन्न अंगों पर है। भयंकर काल जिनका भृकुटि संचालन (भौहों का चलना) है। सूर्य नेत्र है, बादलों का समूह बाल है।)

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा।

निसि अरू दिवस निमेष अपारा।।

श्रवन दिसा दस बेद बखानी।

मारूत स्वास निगम निज बानी।।

(अश्विनीकुमार जिनकी नासिका है, रात और दिन जिनके अपार निमेष (पलक माखा और खोलना) है। दसों दिशाएं कान हैं, वेद ऐसा कहते हैं। वायु श्वास है और वेद जिसकी अपनी वाणी है।)

अधर लोभ जम दसन कराला।

माया हास बाहु दिगपाला।।

आनन अनल अंबुपति जीहा।

उतपति पालन-प्रलय समीहा।।

(लोभ जिनका अधर (होठ) है, यमराज भयानक दाँत है। माया हँठी है, दिक्पाल भुजाएँ हैं। अग्नि मुख है; वरूण जीभ हैं। उत्पत्ति, पालन और प्रलय जिनकी चेष्टा (क्रिया) है।)

रोम राजि अष्टादूस भारा।

अस्थि सैल सरिता नस जारा।।

उदर उदधि अधगो जातना।

जगमय-प्रभु का बहु कलपना।।

(अठारह प्रकार की असंख्य वनस्पतियाँ जिनकी रोमावली है, पर्वत अस्थियाँ हैं, नदियाँ नसों का जाल है, समुद्र पेट है और नरक जिनकी नीचे की इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकार प्रभु विश्वमय हैं, अधिक कल्पना (ऊहापोह) क्या की जाय?)

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान्।

मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान।।

(शिव जिनका अहंकार है, ब्रह्मा बुद्धि है, चन्द्रमा मन है और महान् (विष्णु) ही चित्त है। उन्हीं चराचररूप भगवान् श्रीराम जी ने मनुष्यरूप में निवास किया है।)

अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरू बिहाइ।

प्रीति करुहूँ रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ।।

(हे प्राणपति! सुनिये ऐसा विचार कर प्रभु से वैर छोड़कर श्रीरघुबीर के चरणों में प्रेम कीजिये जिससे मेरा सुहाग न जाय।)

सेना सहित श्रीराम के लंका पहुँचने के बावजूद भी जब अंगद रावण के पास श्रीराम का दूत बनकर जाते हैं और श्रीराम के शरण में चले जाने की बातें रावण को तरह-तरह से समझाते हैं तो भी रावण मानने को तैयार नहीं होता तो अंगद कहते हैं कि अगर तू मेरा चरण हटा सके तो श्रीराम जी लौट जायेंगे। ऐसा इसलिए वे करते हैं ताकि रावण को अपनी शक्ति का घमंड टूट सके परन्तु रावण का इशारा पाते हीं इन्द्रजीत (मेघनाथ) एवं अनेक बलवान योद्धा पूरे बल से

पैर हटाने का प्रयास करते हैं, अन्रत: असफल हो सिर नीचा कर बैठ जाते हैं। अंगद के ललकार पर रावण स्वयं उठा, तब अंगद ने कहा- मेरे चरण पकड़ने से तेरा बचाव नहीं होगा। अच्छा होता जाकर श्रीराम जी के चरणों को पकड़ लो। दूत के कल्याणकारी वचन उसे नहीं सुहाते, बल्कि और अधिक आहत व उदास होकर रावण जब संध्या समय महल में जाता है तो परिस्थिति की नजाकत को समझते हुए पुन: मन्दोदरी रावण को समझाने का असफल प्रयास करती है–

कंत समुझि मन तजहू कुमतिहि।

सोह न समर तुम्हारि रघुपति ही।।

रामानुज लघु रेख खचाई।

सोउ नहिं नाघेहू असि मनुसाई।।

(हे कान्त! मन में समझकर (विचारकर) कुबुद्धि को छोड़ दो। आपसे और श्रीरघुनाथ जी से युद्ध शोभ नहीं देता। उनके छोटे भाई ने एक जरा सी रेखा खींच दी थी, उसे भी आप नहीं लाँघ सके, ऐसा तो आपका पुरुषत्व है।)

पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा।

जाके दूत केर यह कामा।।

कौतुक सिंधु नाघि तव लंका।

आयउ कपि केहरी असंका।।

(हे प्रियतम! आप उन्हें संग्राम में जीत पायेंगे, जिनके दूत का ऐसा काम है। खेल से ही समुद्र लाँघकर वह वानरों में सिंह (हनुमान) आपकी लंका में निर्भय चला आया।)

रखवारे इति बिपिन उजारा।

देखन तोहि अच्छ तेहिं मारा।।

जारि सकल पुर कीन्हेसि छारा।

कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा।।

(रखवालों को मारकर उसने अशोक वन उजाड़ डाला। आपके देखते-देखते उसने अक्षयकुमार को मार डाला और सम्पूर्ण नगर को जलाकर राख कर दिया। उस समय आपके बल का गर्व कहाँ चला गया था?)

अब पति मृषा गाल जनि मारहू।

मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु।।

पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु।

अग जग नाथ अतुलबल जानहुँ।।

(अब हे स्वामी! झूठ (व्यर्थ) गाल न मारिये (डींग न झाँकिये) मेरे कहने पर हृदय में कुछ विचार कीजिये। हे पति! आप श्रीरघुपति को (निय) राजा मत समझिये, बल्कि अग-जगनाथ (चराचर के स्वामी) और अतुलनीय बलंवान् जानिये।)

बान-प्रताप जान मारीचा।

तासु कहा नहिं मानेहि नीचा।।

जनक सभाँ अगनित भूपाला।

रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला।।

(श्रीराम जी के बाण का प्रताप तो नीच मारीच भी जानता था। परन्तु आपने उसका कहना भी नहीं माना। जनक की सभा में अगणित राजागण थे। वहाँ विशाल और अतुलनीय बलवाले आप भी थे।)

सूपनखा कै गति तुम्ह देखी।

तदपि हृदयँ नहिं लाज बिसेषी।।

(शूर्पणखा की दशा तो आपने देख ही ली। तो भी आपके हृदय में (उनसे लड़ने की बात सोचते) विशेष (कुछ भी) लज्जा नहीं आती।)

बांध बिराध खर दूषनहि लीलाँ हत्यो कबंध।
बालि एक सर मारयो तेहि जानहु दसकंध।।

(जिन्होंने विराध और खरदूषण को मारकर लीला से ही कबन्ध को मार डाला, और जिन्होंने बालि को एक ही बाण से मार दिया, हे दशकन्ध! आप उन्हें (उनके महत्त्व को) समझिये।)

जेहिं जलनाथ बँधायउ हेला।
उतरे प्रभु दल सहित सुबेला।।
कारूनीक दिनकर कुल केतू।
दूत पठायउ तव हित हेतू।।

(जिन्होंने खेल से ही समुद्र को बँधा लिया और जो प्रभु सेना सहित सुबेल पर्वत पर उतर पड़े, उन सूर्यकुल के ध्वजारूप करूणामय भगवान् ने आपही के हित के लिये दूत भेजा।)

सभा माझ जेहिं तव बल मथा।
करि बरूथ महुँ मृगपति जथा।।
अंगद हनुमत अनुचर जाके।
रन बाँकुरे बीर अति बाँके।।

(जिसने बीच सभा में आकर आपके बल को उसी प्रकार मथ डाला जैसे हाथियों के झुंड में आकर सिंह (उसे भिन्न भिन्न कर डालता है) रण में बाँके अत्यन्त विकट वीर अंगद और हनुमान जिनके सेवक हैं।)

तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू।
मुधा मान ममता मद बहहू।।
अहह कंत कृत राम बिरोधा।
काल बिबस मन उपज न बोधा।।

(हे पति! उन्हें आप बार-बार मनुष्य कहते हैं। आप व्यर्थ ही मान, ममता और मद का बोझा ढो रहे हैं। हे प्रियतम! आपने श्रीराम जी से विरोध कर लिया और काल के विशेष वश होने से आपके मन में अब भी ज्ञान नहीं उत्पन्न होता।)

काल दंड गहि काहू न मारा।
हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा।।
निकट काल जेहिं आवत साईं।
तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं।।

(काल दण्ड (लाठी) लेकर किसी को नहीं मारता। वह धर्म, बल, बुद्धि और विचार को हर लेता है। हे स्वामी! जिसका काल (मरण समय) निकट आ जाता है, उसे आपही की तरह भ्रम हो जाता है।)

दुइ सुत मरे दहेउ पुर अजहुँ पूर पिय देहु।
कृपा सिंधु रघुनाथ भजि नाथ बिमल जसु लेहु।।

(आपके दो पुत्र मारे गये और नगर जल गया। (जो हुआ सो हुआ) हे प्रियतम! अब भी (इस भूल की) पूर्ति (समाप्ति) कर दीजिये। (श्रीराम जी से वैर त्याग दीजिये), और हे नाथ! कृपा के समुद्र श्रीरघुनाथ जी को भजकर निर्मल यश लीजिये।)

व्यक्ति के विनाश हेतु एकमात्र अहंकार ही पर्याप्त होता है क्योंकि सर्वप्रथम यह व्यक्ति के विवेक को नष्ट कर उचित अनुचित के ज्ञान से

वंचित कर देता है। उस पर से वह व्यक्ति जो काम एवं क्रोध का भी शिकार हो, उसका भला कहाँ कोई कर पाया है। अन्नत: वह अपने ही विकारों के दुष्परिणामों का भोक्ता बन जाता है तभी तो मन्दोदरी जैसी सद्प्रवृत्तियों का धनी एवं पतिव्रता पत्नी पाकर भी रावण विनाश को गले लगाता है। असीस सहिष्णुता का परिचय देती हुई वह नीतिपूर्ण बातों के माध्यम से अपने पति को विकारों से मुक्त बनाना चाहती है और सद्गति के सारे रास्तों से परिचित कराती है तथापि उसके सारे प्रयास असफल हो जाते हैं और वह क्षण आ जाता है जिसकी आशंका से हरदम अपने पति को अगाह करती रही। इस मार्मिक दृश्य का स्वाभाविक चित्रण कर गोस्वामी जी ने रावण के विनाश के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों से छुटकारा की प्रेरणा भी प्रदान की है। पति के कटे सिर देखते ही मंदोदरी व्याकुल और मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ती है। उनके बाल खुल गये और व अपना सुध-बुध खो बैठती हैं तथापि वह अपने पति के प्रताप का बखान करती हुई कहती है-

तव बल नाथ डोल नित धरनी।
तेज हीन पावक ससि तरनी।।
सेष कमठ सहि सकहिं न भारा।
सो तनु भूमि परेए भरि धारा।।

(हे नाथ! तुम्हारे बल से पृथ्वी सदा काँपती रहती थी। अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारे सामने तेजहीन थे। शेष और कच्छप भी जिसका भार नहीं सह सकते थे, वही तुम्हारा शरीर आज धूल में भरा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है।)

बरून कुबेर सुरेस समीरा।
रन सन्मुख धरि काहूँ न धीरा।।
भुजबल जितेहु काल जम साईं।
आजु परेहु अनाथ की नाईं।।

(वरुण, कुबेर, इन्द्र और वायु इनमें से किसी ने भी रण में तुम्हारे सामने धैर्य धारण नहीं किया। हे स्वामी! तुमने अपने भुजबल से काल और यमराज को भी जीत लिया था। वही तुम आज अनाथ की तरह पड़े हो।)

व्यक्ति के दो आयाम है- शरीर और आत्मा। शरीर पर ध्यान केन्द्रित व्यक्ति भौतिक संसाधनों की परिधि में विचरण करता है और विनाश को प्राप्त होता है जबकिं आत्मा पर ध्यान क्रन्द्रित व्यक्ति आध्यात्मिक जगत की श्रेष्ठता में विश्वास करता है। विश्व जिस अदृश्य शक्ति से संचालित है या यों कहे कि विश्व जिस शक्ति का विस्तार है या विश्व ही जिसमें समाया हुआ है, वह शक्ति ही रामचरितमानस में श्रीराम हैं और उनसे विमुख होना ही शक्ति के सत्ता की अस्वीकृति है और अपने विनाश का मूल है। तभी तो मन्दोदरी रावण के विनाश के मूल में विकारों के साथ ही श्रीराम से विमुख होने को मुख्य कारण के रूप में बताती हुई कहते है-

जगत बिदित तुम्हारि प्रभुताई।
सुत परिजन बल बरनि न जाई।
राम बिमुख अस हाल तुम्हारा।
रहा न कोउ कुल रोवनिहारा।।

(तुम्हारी प्रभुता जगत भर में प्रसिद्ध है। तुम्हारे पुत्रों और कुटुम्बियों के बल का हाय! वर्णन ही नहीं हो सकता। श्री रामचन्द्र जी के विमुख होने से ही तुम्हारी ऐसी दुर्दशा हुई कि आज कुल में कोई रोने वाला भी न रह गया।)

रावण की मृत्यु उचित या अनुचित यह किसी के लिए वाद-विवाद का विषय नहीं क्योंकि पतिव्रता मन्दोदरी अपने पति की मृत्यु से आइत होते हुए भी मृत्यु को उचित ठहराती हुई करती है-

तव बस विधि प्रपंच सब नाथा।

सभय दिसिय नित नावहिं माथा।।

अब जव सिर भुज जंबुक खाहीं।

राम बिमुख यह अनुचित नाहीं।।

(हे नाथ! विधाता की सारी सृष्टि तुम्हारे वश में थी। लोकपाल सदा भयंभीत होकर तुमको मस्तक नवाते थे। किन्तु हाय! अब तुम्हारे सिर और भुजाओं को गीदड़ खा रहे है। राम विमुख के लिये ऐसा होना अनुचित भी नहीं है (अर्थात् उचित ही है)।)

राक्षस कुल में जन्म लेकर एवं अहंकारी, कामी, क्रोधी पति रावण के साथ जीवन यापन करती हुई भी मन्दोदरी सद्प्रवृत्तियों की संवाहिका बनी रही। दूसरों से द्रोह करने में तत्पर तथा पाप समूहमय अपने पति रावण को प्रभु श्रीराम ने अपना धाम दिया। अतएव प्रभु श्रीराम के चरणों में नत मस्तक होती हुई कहती है-

जान्यो मनुज करि दनुज,

कानन दहन पावक हरि स्वयं।

जेहि नमत सिप ब्रह्मादि

सुर पिय भजेहु नहिं करूनामयं।।

आजन्म ते परदोह रत

पापौधमय तब तनु अयं।

तुम्हहू दियो निज धाम

राम नमामि ब्रह्म निरामयं।।

(दैत्यरूपी वन को जलाने के लिये अग्निस्वरूप साक्षात् श्रीहरि को तुमने मनुष्य करके जाना। शिव और ब्रह्मा आदि देवता जिनको नमस्तकार करते हैं, उन करूणामय भगवान् को हे प्रियतम! तुमने नहीं भजा। तुम्हारा यह शरीर जन्म से ही दूसरों से द्रोह करने में तत्पर तथा पाप समूहमय रहा। इतने पर भी जिन निर्विकार ब्रह्म श्रीराम जी ने तुमको अपना धाम दिया, उनको मैं नमस्कार करती हूँ।)

- फ्लैट नं. 301, सिद्धि विनायक टावर, ऊर्जा नगर, सगुना-खगौल रोड़, दानापुर, पटना-801503। मो. 94254-05022

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. १२
मार्च ,२०२४

सद्गुण एवं संघर्ष ही किसी को राम बनाते हैं

- सीताराम गुप्ता

पिछले दिनों डाक से एक पत्रिका आई। उसके मुख पृष्ट पर एक अत्यंत सुंदर सार्थक व नयनाभिराम चित्र छपा था। चित्र में राम माता कौशल्या के चरण स्पर्श कर रहे हैं। चित्र के नीचे मानस की सुंदर पंक्तियां लिखी हैं- **प्रातकाल उठि कै रघुनाथा मातु पिता गुरु नावहिं माथा।** मैंने ये चित्र अपने साढ़े चार वर्ष के पौत्र प्रशस्त को दिखलाया और उसे चित्र के विषय में बतलाया। उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। भगवान् राम माता कौशल्या के पैर क्यों छू रहे हैं? पैर छूने से क्या होता है? मेरे मन में भी अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए। जो स्वयं भगवान् कहलाते हैं वो क्यों सबके पैर छूते हैं? वास्तव में इन्हीं कुछ प्रश्नों के सही उत्तरों में निहित है एक बालक के भगवान् बनने की प्रक्रिया।

राम के समकालीन अथवा उनके बाद भी न जाने कितने बालक अथवा व्यक्ति हुए हैं लेकिन हम केवल राम को जानते हैं। नहीं भी जानते तो उनका नाम अवश्य सुना है। क्या हम राम को इसलिए जानते हैं कि राम एक प्रसिद्ध राजा के पुत्र थे अथवा एक प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न हुए थे? न जाने कितने पराक्रमी व वैभवशाली राजा और उनके पराक्रमी व वैभवशाली पुत्र हुए हैं लेकिन हम कहां उन्हें जानते हैं? यदि हम राम को जानते हैं तो हम उन्हें उनके विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण जानते हैं व उनके उदात्त गुणों के कारण उन्हें भगवान् मानते हैं। बचपन से ही राम गुणों का आगार हैं। बालक राम प्रातःकाल उठकर माता-पिता व गुरुओं अथवा अग्रजनों को शीष नवाते हैं।

राम में बचपन से ही बड़ों के प्रति आदर-सम्मान, अभिवादन व शिष्टाचार का संस्कार है। राम माता-पिता व गुरुओं का सम्मान करते हैं। वे माता कौशल्या का ही नहीं सभी माताओं का पूर्ण आदर करते हैं। राम एक आदर्श पुत्र व शिष्य ही नहीं एक आदर्श भाई भी हैं क्योंकि वे अपने सभी भाईयों से अगाध प्रेम करते हैं व उनका मार्गदर्शन करते हैं। ऐसा बालक सबका स्नेह व आशीर्वाद पाता है। यह स्नेह और आशीर्वाद ही है जो क़िसी को भी ऊँचाई पर ले जाने में सक्षम है। राम भी अपने इन्हीं गुणों के कारण बहुत ऊँचे उठ जाते हैं। अपने पूरे जीवनकाल में अवस्थानुसार वे सदैव सद्गुणों का पालन करते हैं।

राम एक अत्यंत आज्ञाकारी पुत्र हैं। पिता व गुरु की आज्ञा से वे अल्पवय में ही राक्षसों का संहार करने के लिए गुरु के साथ वन में चले जाते हैं व पिता के संकेत मात्र से चौदह वर्ष का वनवास

सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। विमाता कैकेयी के कारण उन्हें चौदह वर्ष वन में व्यतीत करने पड़ते हैं लेकिन वे भूलकर भी उन्हें दोष नहीं देते व उनके प्रति उनका आदर कम नहीं होता। राम की सकारात्मकता तो देखिए जब वनवास के दौरान एक मुनि उनकी इस अवस्था के लिए कैकेयी को दोष देते हैं तो वे कहते हैं कि मुनिवर माता की कृपा के कारण ही तो मुझे आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इसी सहिष्णुता व सकारात्मकता ने राम को राम बनाया।

राम एक धीरोदात्त नायक हैं। उनके चरित्र में किसी तरह की जड़ता नहीं है। उनके चरित्र में किसी प्रकार का पक्षपात अथवा असहिष्णुता नहीं है। वे पूर्णत: समन्यवादी हैं। वे अत्यंत विनम्र हैं। विनम्रता के साथ-साथ उनमें पराक्रम व साहस भी कम नहीं है। उस समय के जितने भी आततायी हैं वे उन सबका सफाया कर डालते हैं। राम दूसरों पर अन्याय हो तो देखकर तटस्थ नहीं रहते। वे भयमुक्त समाज के पक्षधर ही नहीं भयमुक्त समाज के निर्माता भी हैं। वे जहां भी जाते हैं लोगों को आतंक से मुक्त करवा कर उन्हें आराम से जीवन जीने का अवसर उपलब्ध करवाते हैं। वनवास के दौरान वे सभी वनवासियों का स्नेह व सम्मान पाते हैं क्योंकि उनमें सबको अपना बना लेने का गुण है। राम ने केवल उन्हें समानता का दर्जा देते हैं अपितु उनके विकास के लिए भी कार्य करते हैं। व्यक्तिगत रूप से भी राम न जाने कितने लोगों को श्राप, अपराध-बोध अथवा जड़ता से मुक्त करते हैं।

राम विषम से विषम परिस्थितियों में विचलित नहीं होते। उनमें विषमताओं को अवसर में बदलने का विशेष गुण है। वे संघर्ष भी कम नहीं करते। सीमित साधनों के बावजूद वे रावण जैसे अति बलशाली शासक से युद्ध करते हैं और अपने कौशल से उसे पराजित कर देते हैं। रावण उनका सबसे बड़ा शत्रु है लेकिन वे रावण के गुणों को भी बहुत महत्त्व देते हैं। जब रावण मृत्यु के निकट होता है तब राम अपने अनुज लक्ष्मण को रावण से धर्म व नीति की शिक्षा लेने के लिए भेजते हैं। आज कितने लोग हैं जो अपने शत्रुओं के गुणों को स्वीकार कर उनका आदर करते हैं व उन्हें अपने जीवन में लागू करते हैं? आज हमारी सबसे बड़ी विडंबना यही है कि हम जिन्हें अपना विरोधी समझते हैं उनके सद्‌गुणों को स्वीकार कर उन्हें महत्त्व देना तो दूर उन सद्‌गुणों को अपनाने से भी परहेज करते हैं।

राम को हर सद्‌गुण व संघर्ष स्वीकार्य है। वास्तव में राम को इन्हीं गुणों ने भगवान् राम बनाया। सद्‌गुण व संघर्ष ही किसी को राम बना सकते हैं। सहिष्णुता ही किसी को राम बना सकती है। यदि राम के चरित्र में इन गुणों का समावेश नहीं होता तो क्या आज वे हमारे आराध्य हो सकते थे? हम राम के गुणों के कारण उन्हें भगवान् कहते हैं। उन्हें पूजते हैं। लेकिन क्या हम

वास्तव में पूजना जानते हैं? हम मूर्तियों की पूजा करते हैं। वास्तव में मूर्तियां तो प्रतीक होती हैं पूजा गुणों की ही होती है। भगवान् की पूजा वंदना, गुणगान अथवा प्रशंसा क्यों की जाती है?

जब हम किसी के समाने किसी की प्रशंसा करते हैं तो हमारा उद्देश्य प्रशंसित के गुणों से स्वयं को और दूसरों को प्रेरित करना होता है। गुणगान अथवा प्रशंसा से तात्पर्य किसी के चरित्र की सकारात्मकता को स्वीकार कर उससे प्रेरणा लेना व उसे अपने जीवन में उतारना ही होता है। पूजा, वंदना, गुणगान अथवा प्रशंसा का उद्देश्य भी आराध्य के गुणों को स्वयं में स्थापित करना ही होता है। यदि हम किन्हीं गुणों के कारण किसी की प्रशंसा, पूजा, वंदना अथवा गुणगान करते हैं लेकिन आचरण उन गुणों के विपरीत करते हैं तो ऐसी प्रशंसा अथवा पूजा निरर्थक होगी। राम कोई मूर्ति नहीं सद्गुणों का समुच्चय हैं। राम के सद्गुणों को आत्मसात करना ही उनकी सच्ची पूजा, वंदना, गुणवान अथवा प्रशंसा है।

– ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा, दिल्ली – 110034
मो. 94254-05022

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७२, सं. १२
मार्च ,२०२४

भगवद्गीता किञ्चिदधीता (द्वितीय अध्याय से)

- शोधछात्र भूपेन्द्र सिंह

श्रीमन्ममहाभारत के भीष्मपर्व के २५वें से ४२वें अध्याय तक के अठारह अध्यायों वाले श्रीमद्भगवद्गीता ग्रन्थ ने उपनिषद् के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस ग्रन्थ पर असंख्य टीकाएं लिखी जा चुकी हैं एवं बहुत सी भाषाओं में इसका अनुवाद भी हो चुका है। वास्तव में श्रीमद्भगवद्गीता का माहात्म्य वाणी द्वारा वर्णन करने के लिये किसी का भी सामर्थ्य नहीं है; क्योंकि यह एक परम रहस्यमय ग्रन्थ है। इसमें सम्पूर्ण वेदों का सार-सार संग्रह किया गया है। इसीलिए गीता के विषय में प्रसिद्ध उक्ति है-

सर्वोपरिषदों गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

श्रीमद्भगवद्गीता की महनीयता का विवेचन् करना करना मुझ अल्पमेधा के सामर्थ्य की बात नहीं है। जो गीताज्ञान स्वयम् भगवान का हृदय है और भगवान के शब्दों में **'गुह्याद् गुहयतरम्'** जो परम गोपनीय है, उसके माहात्म्य का प्रकाश हो भी कैसे सकता है। लेकिन फिर भी मेरे शोष शीर्षक **भगवद्गीता किञ्चिदधीता** उक्ति को सार्थक करते हुए, मैं श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय **सांख्ययोग** को यहां प्रस्तुत कर रहा हूँ। श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में बेहतर श्लोक है। प्रायः सभी श्लोक में आध्यात्मिक विद्या का, जगत् की नश्वरता का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य कर्मों का, निष्काम कर्म की शिक्षा का, ज्ञान विज्ञान का एवं भक्ति इत्यादि विषयों का विस्तृत विवेचन मिलता है।

गुरून्हत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो
भोक्तु भैक्ष्यमपीह लोके।[1]

अर्जुन के यह वचन हमें यह प्रेरणा देते हैं कि हमें अपने गुरुजनों का हमेशा आदर करना चाहिए लेकिन आज के वर्तमान समय में हम दूरदर्शन और समाचार पत्रों में देखते हैं कि शिष्य और गुरु के संबंध किस प्रकार के हैं।

वर्तमान समय में हम देखते हैं कि मोह ने हमें इतना जकड़ लिया है कि हम अपने किसी आत्मीय को अगर कुछ हो जाता है तो हम बहुत दुःखी हो जाते हैं और उसके लिए शोक करने लगते हैं किंतु भगवान् श्रीकृष्ण के वचन हमें प्रेरणा देते हैं कि हमें शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि-

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।[2]

अर्थात् पंडित लोग जीवित और मृत दोनों ही प्रकार के मनुष्यों के लिए शोक नहीं करता। जो श्रीकृष्ण की इस बात को समझ लेता है कि आत्मा

अन्य शरीर को इस प्रकार प्राप्त करती है जैसे देह बालकपन जवानी और वृद्धावस्था को,[3] वह कभी दु:खी नहीं होता। जब हम अपने किसी को खो देते हैं तो हमें बहुत दु:ख होता है उस दु:ख का कारण होता है उसकी मृत्यु लेकिन जो श्रीमद्भगवद्गीता की इन पंक्तियों को अपने हृदय में उतार लेता है कि आत्मा की कभी मृत्यु नहीं होती फिर वह कभी दु:खी नहीं होता, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ने आत्मा के विषय में कहा है-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।[4]
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।[5]

आज का मानव दु:ख में बहुत अधिक दु:खी होता और सुख में बहुत अधिक सुख का अनुभव करता है किंतु श्रीमद्भगवद्गीता हमें सिखाती है कि हमें दु:ख नहीं होना चाहिए और सुख में अत्यधिक सुख का अनुभव नहीं करना चाहिए-

समदु:खसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।।[6]

हम समाज में ऐसी बहुत सी घटनाएँ देखते हैं कि अपने किसी आत्मीय है कि मृत्यु के बाद लोग अपना मानसिक संतुलन खो देते हैं और पागल हो जाते हैं। ऐसे लोगों को श्रीमद्भगवद्गीता से यह सीख लेनी चाहिए-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।[7]

अर्थात् जिनका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य ही होगी और मरे हुए का अवश्य ही फिर से जन्म होगा।

सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।[8]

श्रीमद्भगवद्गीता की यह पंक्तियां हमें सिखाती है कि हमें सुख-दु:ख लाभ हानि इत्यादि को समान समझते हुए अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना चाहिए लेकिन आज का मनुष्य किसी कार्य को करने से पहले उसमें अपने लाभ को ही देखता है। श्रीमद्भगवद्गीता हमें स्थिरप्रज्ञ होने की प्रेरणा देती है स्थितयज्ञ मनुष्य के मन में दु:खों की प्राप्ति होने पर उद्वेग नहीं होता और सुखों की प्राप्ति मैं नि:स्पृह रहता है ऐसे मनुष्य के राग भय क्रोध नष्ट हो जाते हैं।

दु:खेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।[9]

आधुनिक युग के मानव का यह स्वभाव बन गया है कि वह किसी काम को करने से पहले उसके फल की इच्छा करने लगता है। अनाशक्ति भाव से किया गया कर्मों में बंधन का हेतु नहीं होता और ना ही विषयों में बन्धन का साधन होता है। किंतु श्रीमद्भगवत्गीता में श्रीकृष्ण निष्काम कर्म करने की प्रेरंणा देते हैं-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[10]

श्रीमद्भगवात्गीता हमें यह उपदेश देती है कि हमें किसी भी वस्तु की आसक्ति नहीं करनी

चाहिए। क्योंकि आसक्ति कामना को उत्पन्न करती है और कामना पूर्ण न होने पर क्रोध बढ़ता है-

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामनात्क्रोधोऽभिजायते।।[११]

शास्त्रों में प्रतिपादित किया गया है कि क्रोध मनुष्य का सबसे भयानक शत्रु है और वर्तमान समाज मनुष्य इतना करूर बनता जा रहा है की छोटी-छोटी बातों पर मारने मरने पर आ जाता हैं क्रोध से होने वाले नाश का श्रीमद्भगबद्गीता में कितने सुंदर शब्दों में वर्णनं किया गया है-

क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।[१२]

आज की कोलाहल भरे युग में हर कोई अपने जीवन में शांति चाहता है लेकिन शांति का उपाय तो हमें श्रीमद्भगवत्गीता देती है शांति कैसे प्राप्त होगी इसके लिए भगवत्गीता में सुंदर शब्दों में कहा गया है-

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।।[१३]

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीता-सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः।।

- विश्वेश्वरानंद विश्वबन्धु संस्कृत भारत भारती अनुशीलन संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर।

---

१. श्रीमद्भगवत्गीता २/५ २. वही, २/५

३. देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। श्रीमद्भगवत्गीता २/५

४. वही, २/२० ५. वही, २/२३ ६. वही, २/१५

७. वही, २/१७ ८. वही, २/३८ ९. वही, २/५६

१०. वही, २/४७ ११. वही, २/६२ १२. वही, २/६३

१३. वही, २/७१

खुदाई

– देवेन्द्र कुमार मिश्र

और एक दिन उसके सब्र का बंध टूट गया। आखिर कब तक सहता। पढ़ाई खत्म होने के बाद वर्षो की बेकारी से माँ के तीखे वचनों से मन आहत होता। पिता जो नसीहते देते उससें भी उसकी असफलता के ताने ही होते। वह समझ चुका था कि संसार में सफल आदमी को ही सम्मान मिलता है। डूबते सूरज को कौन नमस्कार करता है।

उस डूबते सूरज के पास एक गरीब कम उम्र की लड़की का रिश्ता आया। वह तैयार न था। लेकिन संयुक्त रूप से माता-पिता की यही सलाह थी, समझाइश थी चेतावनी थी। ये तो तुम्हारी किस्मत अच्छी है कि लड़की वाले अति दरिद्र है। अन्यथा एक बेकार व्यक्ति को कौन अपनी लड़की देता है। लड़की वालों के पास देने को दहेज होता तो इस घर में रिश्ता लेकर आते। जिसका लड़का बेरोजगार है। जिसकी नौकरी के साथ-साथ विवाह की उम्र भी निकल चुकी है। जबकि उसका कहना था कि उम्र का इतना अंतराल बाद में घातक हो सकता है। फिर ऐसा रिश्ता करना किसी की मजबूरी का फायदा उठाना हुआ। प्राइवेट जॉब करके वह कुछ कमा लेता था लेकिन अर्द्धबेरोजगारी जैसी स्थिति थी। लेकिन परिवार के दबाव के आगे झुकना पड़ा।

बड़ा भाई सम्पन्न था। वह अपनी पत्नी को लेकर अलग हो गया। भाई और भाभी की संयुक्त सोच रही थी। हम सम्पन्न है। ऊँची नौकरी में है दोनों। इन दरिद्रों के मध्य अपना जीवन क्यों बर्बाद करें। हमें अपने सुखमय वैवाहिक जीवन के लिए अलग रहना होगा। और, वे अलग हो गये। पिता को थोड़ी सी पेंशन मिलती थी। गरीबी, अभाव में होते कलह से वह कमजोर पड़ रहा था दिन-प्रतिदिन। ऐसे में ही एक दिन उसकी आँखों ने वे बेशर्म दृश्य भी देख लिया जो उसे नहीं देखना चाहिए था। पत्नी ने माफी, शर्मिन्दगी की बजाय पलटकर उत्तर दिया। मैं जवान स्त्री और तुम अपनी उम्र देखो। तुम्हारी इच्छायें मर चुकी हैं। मेरी तो जिन्दा है। भूख के आगे घुटने टेकने ही पड़ते है। यदि आपत्ति करोगे तो दहेज की रिपोर्ट करूंगी। पेट की भूख तो वह समझता था लेकिन इस भूख को क्या नाम दे गलती थी भी उसकी। अपने से २२ वर्ष छोटी लड़की से विवाह का अन्जाम तो यही होना था। वह टूट चुका था। रिश्ते-नातों पर से उसका विश्वास उठ चुका था। अगर आप देने में सक्षम हैं तो सब आपके हैं। यदि आप अक्षम हैं तो आपका कोई नहीं है। उसका

सगा बड़ा भाई यदि रास्ते में मिल जाता है तो मुँह घुमाकर निकल जाता इस डर से कि कहीं कुछ मांगने न लगे।

४२वर्ष की अम्र में अपनी दुर्बल काया को लेकर संसार से टूटा हुआ वह एक दिन पलायन कर गया। इस तरह के हताश व्यक्तियों के लिए धर्म ही एक मात्र विकल्प बचता है। जबकि वह जानता था कि ईश्वर प्रेम से मिलता है। टूटे मन, निराशा और पलायन से नहीं लेकिन कोई और चारा न था उसके पास। वह संसार की मार से अधमरा धर्म की शरण में गया। पहले वह उन विख्यात आश्रमों में गया जहां ज्ञान, ध्यान की कक्षाओं के कोर्स करवाये जाते थे भारी फीस लेकर। ऐसा लगता था ये ध्यान धर्म के केन्द्र नहीं बल्कि कोचिंग सेन्टर हो। बाजारवाद से ग्रस्त आश्रमों से अन्य आश्रमों में गया तो वहाँ पर भोग विलास का खेल जारी देखकर उसे लगा कि ये लोग सन्यास को, धर्म को क्यों बदनाम करते हैं। इससे अच्छा तो था कि विवाह कर लेते। लेकिन जब भोगने को एक नहीं अनेक स्त्रियाँ मिले। फिर उन्हीं से दान-दक्षिणा मान-सम्मान मिले तो व्यभिचारियों के लिए इससे बेहतर कोई रास्ता नहीं।

वह हिन्दु धर्म के गरीब संतो से मिला तो उसे समझ में आया कि आधे से अधिक तो उसी की तरह संसार से भागे हुए हैं। दुखी और निराश अपनों के घात से पीड़ित शांत पानी की तरह उदास जैसे। कुछ ऐसे थे जिन्हें बनना ही साधु था। वे इसी साधुगिरी में मस्त थे। लेकिन उनका एक ही कहना था। विश्वास रखो। धर्म में संदेह के लिए कोई स्थान नहीं। तर्क मत करो। आँखे बन्द करके केवल श्रद्धा रखो। क्या मिला क्या नहीं मिला ये बात मन में मत लाओ। हरि कथा कहो। दक्षिणा लो। गुजारा करो। तब उसे ये बात नहीं जमी तो वह इस्लाम की ओर बढ़ा। भाईचारे वाले धर्म में भाई-भाई का गला काट रहा है। ईसाई धर्म की ओर बढ़ा। तो वहाँ भी वर्चस्व और श्रेष्ठता की होड़ थी। ध्येय सभी का एक था। पैसा, सुख, सुविधाएँ, सम्मान हासिल करना। जो संसार का हाल था। वहीं धर्म कि स्थिति थी। सच्चा कोई नहीं। सब बगुला भगत सबकी स्थिति वैसी ही थी जैसे दूषित भोजन से शरीर की और दूषित मन से मन और मस्तिष्क की होती है। वह वहाँ भी न रुका और आगे बढ़ता गया अकेला। मन की शांति, परमात्मा के दर्शन की तलाश में। भटकते-भटकते वह एक गाँव में पहुँचा। वह भिक्षा मांगता और एक समय तो भक्तगण अपनी समस्याएँ लेकर आये। लेकिन जब उसने स्पष्ट किया कि वह स्वयं अपनी समस्या में है। आप लोगों की समस्यायें हल करना मेरे बस की बात नहीं है। तब भक्तों ने उसे संत नहीं भिखारी समझकर भीख देना शुरु किया। पुराने घाव रह-रहकर उसे दुखी करते। मन उदास हो जाता। चित्त अशांति से भर जाता। उसे अपने जप का कोई

फल मिलता नहीं दिखा। उसे संदेह होने लगा कि ईश्वर नाम का कोई है भी या नहीं।

गर्मी आरंभ हो चुकी थी। गाँव के लोग पलायन करने लगे थे शहरों की ओर। घरों में सिर्फ बुजुर्ग लोग थे जो चलने फिरने में असमर्थ थे। जब उसने गाँव वालों से पूछा कि कहाँ जा रहे हो और क्यों? तब गाँव वालों ने बताया। गर्मी में यहाँ पानी नहीं रहता। कुँए सूख जाते हैं। हैंडपंप में पानी नहीं आता। ऐसे में प्यासे रहने से अच्छा है कि शहर में जाकर मजदूरी करें। बरसात के आते ही फिर आ जायेगें। बुजुर्गो के लायक थोड़ा बहुत पानी कुएँ में रहता है। गाँव वीरान हो गया। लोग अपने परिवार के साथ शहर कूच कर गये। कुएँ में सबसे निचले स्तर पर गंदा पानी था। जिसे बुजुर्ग लोग कपड़े के छन्ने से साफ करके पीते थे। जानवर भी दूसरे क्षेत्रों में मिकल जाते थे। जो नहीं जा पाते वे प्यास से मर जाते। बुजुर्गो को छोड़ने की वजह ये थी कि घर की देखभाल भी हो जाती। फिर वे शहर की भाग-दौड़ भरी जिन्दगी के योग्य भी नहीं थे। और साधु बने इस व्यक्ति को समझ में आया कि अपने लिए जीना। अपने लिए तप करना ये तो संसारी लोग भी करते हैं। जब उसने साधु का चोला पहना है तो उसे परहित में कर्म करना चाहिए। मन में ध्येय को निश्चत करके उसने गेंती, फावड़ा, तसला का इन्तजाम किया और खाली जगह पर खुदाई प्रारंभ कर दी। अप्रैल की चिलमिलाती गर्मी में वह दिन भर खुदाई करता। थक जाता तो किसी वृक्ष के नीचे आराम कर लेता। एक समय भिक्षा मांगकर भोजन करता और फिर खुदाई प्रारंभ कर देता। इस खुदाई के काम में वह अकेला था। थकान से वह मंत्र, स्त्रोत सब कुछ भूल कर गहरी नींद में चला जाता और रात में नींद खुलने पर फिर खुदाई आरंभ कर देता।

गाँव के वृद्ध लोगों ने पूछा भी कि ये क्या कर रहे हो? जब उसने बताया कि तालाब बना रहा हूँ। ताकि बरसात में पानी जमा हो सके और गर्मियों में काम आये तो उन्होंने उसे समझाया। "अकेले संभव नहीं है तलाब निर्माण। फिर ये सरकार का काम है। तुम साधु हो अपने इष्ट के दर्शन के लिए ध्यान करो।"

उसने कहा- "आप लोग अपनी मेहनत और पसीने की कमाई से भिक्षा देकर मेरे लिए भोजन दे सकते हो तो मैं भी आपके लिए कुछ तो करने का प्रयास कर ही सकता हूँ। सच्ची भक्ति परहित ही है और कोई साथ न दे तो अकेले चलना चाहिए। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों कभी न कभी तो तालाब बनेगा और मैं ये करके रहूँगा।"

खुदाई जारी रखी उसने। उसे दिन-रात मेहनत करते देख गाँव के कुछ वृद्धों ने सोचा हमें भी सहयोग करना चाहिए। उन लोगों से जितना बन सका वे मिट्टी को तसले में भरकर फेंकने में उसकी कुछ मदद कर देते। एक दिन एक वृद्ध ग्रामीण ने पूछा- "साधु महाराज तालाब बन भी

गया और पानी न गिरा तो''

उसने उत्तर दिया नहीं गिरा तो अगले साल गिरेगा। उसके अगले साल गिरेगा। जो हमारे हाथ में है वो हम करें। अगर कोई ऊपर वाला है तो कभी न कभी बरसेगा ही। इसके पहले भी तो पानी गिरा है लेकिन जल संरक्षण की व्यवस्था न होने से गाँव वाले पलायन करते हैं। यदि पहले से तालाब होता तो पलायन की नौबत नहीं आती।

मई बीता, जून बीता, आधा जुलाई बीत गया। तालाब बहुत गहरा तो नहीं लेकिन फिर भी बन चुका था। जुलाई भी सूखा गया। लेकिन साधु ने अपना कर्म जारी रखा। अब अच्छी खासी खुदाई हो चुकी थी। खुदाई करना उसका काम था। पानी गिराना खुदा का काम था। वह अपना काम कर चुका था। अगस्त लग चुका था। खुदा ने भी अपना काम कर दिय। आसमान में घनघोर घटायें छा गई, बादलों ने बरसना खुरु कर दिया। २४ घंटे लगातार मूसलाधार बारिस हुई। तालाब लबालब भर चुका था। ग्रामीण शहर से वापिस गाँव की ओर आना प्रारंभ हो गये। उन्होंने पानी से भरे तालाब का नाम साधु तालाब रख दिय। ग्रामीणों का पलायन बंद हो गया। लेकिन वह साधु पुरुष उस गाँव से गायब होकर किसी दूसरे गाँव में खुदाई करने लगा था, भीषण गर्मी में। इससे उसके मन को असीम शांति मिली। उसके चित्त में प्रसन्नता छा गई। जबकि वह कोई, मंत्र, पूजा, पाठ नहीं कर रहा था। वह समझ गया था कि परहित ही सबसे बड़ा धर्म है। वह स्वयं में ईश्वर को पा रहा था। उसके सारे क्लेश, अशांति समाप्त हो चुकी थी। जब तक वह जिन्दा रहा खुदाई में लगा रहा और खुदा का नूर उस पर बरसता रहा। अपनी पूरी उम्र उसने इसी काम में लगा दी। मृत्यु के बाद भी उसके चेहरे पर आसमानी नूर था। जिन-जिन गाँवों में उसने खुइाई अभियान शुरु करके तालाब बनाये। उन-उन गाँवों में उस साधारण पुरूष को असाधारण समझकर उसके नाम का स्मरण करते है आज भी लोग।

- राजुल ड्रीम सिटी, ए-29, फर्स्ट फ्लोर, अमखेड़ा रोड, जबलपुर (म.प्र.) 482004।
मो. 94254-05022

कविता

चले राम लला के मन्दिर कौशल्या बड़भागी के घर

– शशिप्रभा बिंजोला कुकरेती

जय रघुनन्दन जय सियाराम मर्यादा पुरुषोत्तम श्री प्रभु राम।।
श्री प्रभु अभिनन्दन है नम नव वन्दन सियाराम तुम्हरे पद कमलों में,
समस्त भारतवासियों को इस पावन अवसर पर कोटि बधाईयाँ व मंगलकामनाएं,
सूर्यवंश के सूर्य हैं आये खुशियों की बहार है छायी।।
भारत माता धन्य हुई अवधपुरी के भाग्य जागे,
भारत भूमि में जश्न है आज, श्रीराम जी करेंगे राज,
जय श्रीराम ध्वनि से गूजें धरा आकाश पूरी हुई प्रभु मिलन की आश।।
श्रीदशरथ घर जन्में सुत चार इनकी महिमा बड़ी अपरम्पार
देवलोक से सब देव पधारो स्तुति करें हजार।।
आओ ऋषि-मुनि और विद्वानों तुम्हें निमंत्रण अवधपुरी को करें निहाल,
गाओ जी मंगलाचार वेद ध्वनि की सरिता बहा दो गली-गली हर द्वार।।
चाँद सितारों जमी पे उतरो करो अवध का अनुपम श्रृंगार
सजा दो अवध नवेली दुल्हन हो जैसी, शोभा बने अति अपार।।
ढोल नगाड़ों की धिड़कन हो – नारद जी की वीणा दे मधुर झंकार,
चन्दन चौकी सजी हुई है कलश गंगाजल है तैयार।।
पीताम्बरी धोती तन पर सोहे कांधे पर साजे रेशमी दुशहाल,
सोने का सिंहासन दमके सिर रत्न जड़ित चमके ताज।।
जानकी माता वाम विराजे शोभा आज वरनी ना जाय,
अक्षत रोली और चन्दन से तिलक करें लौट आयें हैं राजा राम।।
सत्कार है दीपों की भव्य कतारों से, फूलों के दिव्य हारों से
सौभ्य-सरल-नाजुक और कोमल मर्यादा के रखवाले राम

प्रदूषण से दूर रखें प्रभु-सरयू का भी यही पैगाम।।
पर्यावरण को स्वच्छ रखें हम, श्रीराम जी के आदर्शों का करें सम्मान,
फोड़-पटाखे आतिशबाजी धूमिल करें न देश की शान।।
घर-आँगन में पेड़ लगायें, राम राज्य की शान बढ़ायें,
चौदह वर्ष सघन वन ठहरे राम, मात-पिता की आज्ञा मान
तपोभूमि को पावन करके-फिर ही अयोध्या लौटे श्रीराम।।
ऐसी छवि पर बलि बलि जाये भारत के नर-नारी,
चरण कमल रज दिजों प्रभु भारत भूषण आज
केसरी नन्दन खड़े अधीरा - प्रभु चरन रज लेन ये वीरा।।

संस्थान-समाचार

दान-

Dr. D. V. Salwan, Hoshiarpur.	5000/-
Shri Jagdish Chander Sadana, Ludhiana.	1000/-
Shri Chander Mohan Arora, Hoshiarpur.	3100/-
Yog Sadhana Ashram Samrakshak, Hoshiarpur.	5100/-
Dr. Ashok Sud, Hoshiarpur.	5000/-
Dr. S. L. Chalwa, Jalandhar.	3000/-
Pharma Crafts (India), Gagrat, Una.	5100/-
Mr. Harish K Bharti, U.S.A.	50000/-
Dr. Shiv Kumar Verma, Hoshiarpur.	11000/-

दान-

Shri Raman Sud, Hoshiarpur.	1100/-
Maj. Gen O.P. Parmar, Hoshiarpur.	15000/-
Mrs. Kamla Dadwal, Hoshiarpur.	12000/-
Shri Chander Mohan Khanna, New Delhi.	2100/-
Dr. Bhagender Singh Thakur, Mandi (H.P.)	1100/-
Shri V.M. Bhalla, Chandigarh.	11000/-
Shri A. K. Gupta, Dharamshala (H.P.)	3100/-
Shri A. K. Dhawan, New Delhi.	10000/-

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

शोक समाचार - संस्थान के परम हितैषी श्री रविन्द्र कुमार शर्मा का देहान्त

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की परम हितैषी श्रीमती रंजिता शर्मा के पिता श्री रविन्द्र कुमार शर्मा का दिनांक २९-१-२०२४ को होशियारपुर में देहान्त हो गया। आप बड़े ही सज्जन, मेहनती, दानी, समाजसेवी व्यक्ति थे। इनके परिवार की ओर से संस्थान की समय-समय पर आर्थिक सहायता की जाती है। इस प्रकार के महान् व्यक्ति के चले जाने से उनके परिवार एवं सम्बन्धियों को जी क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना संभव नहीं।

संस्थान के कर्मचारी वर्ग की ओर से दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके परिवारिक जनों एवं सम्बन्धियों को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम - पद्य-प्रसादः (बालोपयोगी पद्यात्मक रचना)
प्रो. कमलेशकुमार छ. चोकसी

प्रकाशक - विद्यानिधि प्रकाशन, डी.10/1061, (समीप महागौरी मन्दिर), खजूरी खास, दिल्ली - 110090

संस्करण - प्रथम (पृ. 163)

मूल्य - 95/- रुपये

लेखक की बालोपयोगी रचना 'पद्यप्रसाद' संस्कृत भाषा में निबद्ध है। न केवल बालकों को ध्यान में रखकर ग्रन्थ की रचना की गई अपितु समस्त सभ्य समाज के लिए यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध हो एतदर्थ सभी श्लोंको का सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद भी दिये जाने से यह कृति नितान्त सभी को लाभ देने में, ज्ञानवृद्धि में और सभ्य समाज बनाने में उपयोगी है।

इस कृति में चौबसी महत्त्वपूर्ण विषयों पर आधारित प्राय 600 सौ श्लोक निबद्ध हैं। या, यों कहिये कि इस ग्रन्थ में चौबीस अध्याय हैं जिनमें लगभग छ: सौ संस्कृतभाषा में अनुष्टुप् छन्दोबद्ध पद्य हैं। साथ-साथ पाठकों के सौकर्यार्थ हिन्दी में अनुवाद भी दिया गया है।

इन चौबीस सन्दर्भों में कुछ ऐसे हैं जिनकी भूमिका बान्धनी आवश्यक समझी गई तो, लेखक ने इन सब बातों पर ध्यान देते हुए प्रस्तावित सन्दर्भ के प्रारम्भ में विषय वस्तु का विस्तृत विवरण भी प्रस्तुत किया है जो अतिप्रशंसनीय कार्य है।

आठ-दस सन्दर्भ कुछ ऐसे भी हैं जो 'पद्यप्रसाद' के प्रकाशन से पूर्व विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखक ने अपनी कृति होने के कारण उन्हें भी यहाँ संगृहीत कर दिया। अत: स्पष्ट है पाठकों को यह अतिरिक्त लाभ होने की सम्भावना बढ़ा देता है।

इन चौबीस सन्दर्भों में बालकों को, सामान्य जन को और जिज्ञासु को 'गागर में सागर समा जाना' वाली कहावत चरितार्थ प्रतीत होती है। निश्चित ही पाठकों को इस से लाभ होगा।

पुस्तक की 'साज-सज्जा' इत्यादि अपेक्षित मान्य सामग्री यहाँ देखने को मिलती है। अत: यह प्रशस्य कार्य है- ऐसा मेरा मानना है।

- प्रो. प्रेम लाल शर्मा, सह-सम्पादक, विश्व ज्योति,
वी. वी. आर. आई, साधु आश्रम, होशियारपुर।

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-२-२०२४ को प्रकाशित।